वर्ष ३३ | वैदिक धर्म | अंक ८
वैदिक-तत्वज्ञान-प्रचारक-सचित्र-मासिक-पत्र
श्रावण २००९

वैदिक धर्म



तुलसी पूज

चित्रकार श्री. दनराज मार्दी] [बॉम्बे आर्ट सोसायटी मुंबईच्या कृपेने

▲ अगस्त १९५२ ▲

वेदोंकी संहिताएँ

	मू.	डा. व्य.
(१) ऋग्वेद (इसमें सर्वानुक्रम, देवतासूची, ऋषिसूची, मंत्रसूची आदि भी है।)	१०	१॥
(२) यजुर्वेद (वाजसनेयी -संहिता)	३	॥
(३) ,, काण्व--संहिता	४	॥।
(४) ,, मैत्रायणी-संहिता	६	१
(५) ,, काठक--संहिता	६	१
(६) ,, सर्वानुक्रम सूत्र (वाजस०)	१॥	॥
(७) ,, वा० सं० पादसूची	१॥	॥
(८) ऋग्वेद मंत्रसूची	२	॥

सामगान

सामवेद कौथुम शाखीय

ग्रामगेय (वेय प्रकृति) गानात्मकः	मू.	डा. व्य.
प्रथमः तथा द्वितीयो भागः	६	१
प्रकृति गान (गान भाग)	५	॥

दैवत संहिता

दैवत संहिता प्रथम विभाग	६	१॥
१ अग्नि देवता मंत्र २४४३ पृ सं ३४६		
२ इन्द्र देवता ,, ३३६३ ,, ३७६		
३ सोम देवता ,, १२६१ ,, १५०		
४ मरुद्देवता ,, ४६४ ,, ७२		
दैवत संहिता तृतीय भाग	६	॥।

(इस तृतीय भागमें कुल १२८ देवता हैं और मंत्र सख्या ३५८ है।)

हिंदी पुस्तकें

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

१ से १८ ऋषिका दर्शन (एक जिल्द)

(१) मधुच्छन्दा, (२) मेधातिथि, (३) शुनःशेप (४) हिरण्यस्तूप, (५) कण्व, (६) सव्य, (७) नोधा, (८) पराशर, (९) गोतम, (१०) कुत्स, (११) त्रित, (१२) संवनन, (१३) हिरण्यगर्भ, (१४) नारायण, (१५) बृहस्पति, (१६) वागाम्भृणी, (१७) विश्वकर्मा, (१८) सप्त ऋषि रु २१॥, १॥]

(१९) वशिष्ठ ऋषिका दर्शन, ७ रु.) डा व्य १॥

यजुर्वेदका सुबोध भाष्य

	मू	डा. व्य
१ प्रथम अध्याय श्रेष्ठतम कर्मका आदेश	१॥	।=
२ ३० वा ,, मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन	२	।≡
३ ३२ ,, एक ईश्वरकी उपासना	१॥	।=
४ ३६ ,, सच्ची शांतिका सच्चा उपाय	१॥	।=
५ ४० ,, ईशोपनिषद्	२	।=

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य

काण्ड १–५	८ रु	१॥
,, ६–१०	८	१॥
,, ११-१८	१०	१

उपनिषद् ग्रंथमाला

	मू	डा व्य.
१ ईशोपनिषद्	२	॥
२ केन उपनिषद्	१॥	॥
३ कठ उपनिषद्	१॥	॥
४ प्रश्न उपनिषद्	१॥	॥
५ मुण्डक उपनिषद्	१॥	॥
६ माण्डूक्य उपनिषद्	॥	≈

साक्षात्कार ग्रंथ

ईश्वरका साक्षात्कार प्रथम भाग	३	॥=

श्रीमद्भगवद्गीता

भगवद्गीता पुरुषार्थबोधिनी (टीका समेत)

,, तीन पृथक् जिल्दोंमें	१५	१॥
,, एक जिल्दमें	१२॥	१॥
,, श्लोकार्ध सूची	॥।	।=
भगवद्गीता लेखमाला भाग १, २, ७	३॥।	१
गीताका राजकीय तत्वालोचन	२	॥
गीता कर्मयोगी गणेशानन्दजी कृत	१	।≈
भगवद्गीता छोटी पुस्तक	१	।=

वाल्मीकि रामायण

१ बालकांड	४	॥=
२ अयोध्या कांड पूर्वार्ध	४	॥=
३ ,, ,, उत्तरार्ध	४	॥=
४ अरण्यकांड	४	॥=
५ किष्किन्धाकाण्ड	४	॥=
६ सुन्दरकांड	४	॥=

७ युद्धकांड छप रहा है।

महाभारत

१ आदिपर्व	मूल्य ७	डा. व्य. १॥
२ सभापर्व	३॥	॥।
३ शांतिपर्व (पूर्वार्ध)	१०	१।

महाभारतकी समालोचना

इसके दो भाग है। प्रत्येक भागका मूल्य ०॥। ।≤

वेद परिचय

१ वेद परिचय भाग १	१॥	।=
२ ,, ,, २	१॥	।=
३ ,, ,, ३	२	।≤

वेद प्रवेश

१ मरुद्देवता का मंत्र संग्रह	५	॥।
२ अश्विनौ देवताका मंत्र संग्रह	५	१
३ ऋग्वेदके अग्नि सूक्त	२	॥

संस्कृत पाठमाला
(चौवीस भाग)

(संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय)

प्रत्येक पुस्तक	॥	=
१ से २४ भागोंका पुरा सेट	१२	१

धर्म-शिक्षाके ग्रंथ

बालक धर्म शिक्षा प्रथम भाग, प्रथम श्रेणीके लिये ≤

,, ,, द्वितीय भाग, द्वितीय ,, ,, ।-

वैदिक पाठमाला तृतीय श्रेणीके लिए ।-

वेद-स्वयं-शिक्षक

वेदका स्वयं शिक्षक भाग १	१॥	।=
,, ,, ,, भाग २	१॥	।=

आगम निबंध माला

१ वैदिक स्वराज्यकी महिमा	॥।	=
२ वैदिक सर्प विद्या	॥=	=
३ वेदमें चर्खा	॥=	=
४ मानवी आयुष्य	॥	=
५ इन्द्र शक्तिका विकास	॥।	=
६ वेदमें कृषिविद्या	॥	-
७ छूत और अछूत प्रथम भाग	१	।≈
८ ,, ,, द्वितीय भाग	१	।≈
९ शतपथ बोधामृत	।=	-

देवता परिचय ग्रंथमाला

१ ऋग्वेदमें रुद्र देवता	॥=	=
२ वैदिक अग्निविद्या	२	।=
३ वैदिक चिकित्सा	१॥	।-

योग साधनमाला

	मू.	डा. व्य
१ ब्रह्मचर्य	१॥	।≤
२ योगके आसन	२॥	॥
३ योगके आसन चित्रपट	।	-
४ योगसाधनकी तैयारी	१	।=
५ सूर्यभेदन व्यायाम	॥।	।-
६ सूर्य नमस्कार	१	।-
७ ,, ,, चित्रपट	≤	-

उद्बोधक पुस्तकमाला

१ विजया दशमी (दशहरा)	॥	≈
२ भारत वर्षके हिंदू सम्राट्	॥।	।-
३ आर्योंका भगवा ध्वज	:	
४ हिंदी मुसलमानोंके कारनामोंका चिट्ठा। =		
५ श्री छत्रपति शिवाजी महाराजका राजा जयसिंहको पत्र	≤	
६ शेषशायी नारायण	=	
७ स्पिनोझा और उसका दर्शन	२	॥

वैदिक व्याख्यान माला

(१) मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन। (२) वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त। (३) अपना स्वराज्य। (४) श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु। (५) व्यक्तिवाद और समाजवाद। (६) ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

ये व्याख्यान तैयार हैं। दूसरे तैयार हो रहे हैं। [प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।≈) छः आने और डा. व्य. =) दो आने]

विष्णु सहस्र नाम मू. १॥ ट. ख. ॥

मासिक पत्र

वैदिक धर्म वार्षिक चंदा ५) वी. पी से ५॥)

पं. मदन मोहन विद्यासागर
तेनाली, के पुस्तक

१ वेदोंकी अन्तःसाक्षी का महत्त्व	०—१—०
२ संस्कार महत्व	०—१—०
३ जन कल्याण का मूल मन्त्र	०—८—०
४ आर्य स्तोत्र	०—८—०

मंत्री- स्वाध्याय-मंडल, भारतमुद्रणालय, आनन्दाश्रम, किल्ला पारडी, (जि. सूरत)

मराठी सूचीपत्र

श्री वाल्मीकीय रामायण, (मराठी अनुवाद)

१ बालकांड मू. ४ ट. ख. ॥=
२ अयोध्याकांड पूर्वार्ध ४ ॥=
३ ,, उत्तरार्ध ४ ॥=
४ अरण्य कांड ४ ॥=
५ किष्किन्धाकांड ४ ॥=
६ सुन्दर कांड ४ ॥=
७ युद्धकांड छापलें जात आहे

पुरुषार्थ ग्रंथमाला

१. एकादशीचा उपवास. ‌‌/४
२. ईशोपनिषद् /१०
३. ईशोपनिषदांतील सामर्थ्याचें राजकारण /८
४. सनातन धर्माचें स्वरूप भाग १ ते ३ /१२
५. सूर्य नमस्कार. /१२
६. ,, चित्रपट /३
७. पृथ्वीवर अमृत-गोदुग्ध /४
८. आसनांचा चित्रपट /४
९. आरोग्यासाठीं योग साधन १ ला भाग, मू. २ रु ट. ख, ।=
१०. आरोग्यसाठीं योग साधन २ रा. भाग, मू. २ रु. ट. ख. ।=
११. सूर्यभेदन व्यायाम ॥। =
१२. मंगलमूर्ति गणेश १ ॥
१३. गणेशाथर्व शीर्ष ॥=

संस्कृत स्वयं शिक्षक

एका वर्षांत उत्तम संस्कृतज्ञ व्हा!
प्रत्येक भागाचें मूल्य. ॥ रु.
२४ भागांचा संपूर्ण सेट मूल्य १२ रु. ट. खर्च १ रु.

मराठी हिंदुस्तानी कोश

संपादक प्रा. वामनराव चोरघडे M, A. B. T.
प्रस्तावना श्री काकासाहेब कालेलकर मूल्य. २) रु. ट. ख. ।=

श्रीमद्भगवद्गीता
पुरुषार्थ बोधिनी टीकेसह

टीका लेखक पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

१. तीन निरनिराळ्या भागामध्यें मूल्य १५ रु. ट. ख. १॥
एका बांधणींत १२॥ १॥
२. गीतेंतील राजकीय तत्वज्ञान २ ॥
४. ,, श्लोकार्ध सुची ॥। ।=
५. भगवद्गीता लहान पुस्तक १ ।=

भगवद्गीता निबंधमाला.
भाग १ से ७

प्रत्येक भाग, कि. २ रु. व. ट. खर्च ॥

विविध पुस्तकें

१ स्वराज्य संबंधानें ऋषींचे संदेश । ‑
२ देवें मंत्राचा अर्थ ।= ‑
३ वैदिक ज्ञानाची उपयुक्तता = ‑
४ विजया दशमी (दसरा) ॥ =
५ हिंदु संघटन /= ‑
६ अखंड हिंदुस्थान ।= =
७ छत्रपति शिवाजी महाराजांचें जयसिंहास पत्र = ‑
८ अहिंसेच्या मर्यादा ‑ ‑
९ आगाखानी संप्रदाय ≡ ‑
१० भारतांतील इस्लामी करणाचीं कारस्थानें ॥।≤
११ मुसलमानांच्या आक्रमणाची जागतिक पार्श्वभूमि १। ॥
१२ प्राचीन आर्यांचे राजकीय विचार ।॥ =
१३ पौराणिक गोष्टींचा उलगडा ॥। ≡
१४ कला आणि इतर निबंध ॥ =
१५ भारतीय संस्कृति ३ ॥=
१६ विष्णु सहस्रनाम १॥ ।=

मासिक पत्र

पुरुषार्थ वार्षिक वर्गणी ४ रु. वी. पी. नें ४॥=

उषा-प्रकाशनाचीं पुस्तकें

१ जीवन प्रकाश मूल्य २॥ रुपये
२ रातराणीची फुलें [लघुकथा] १॥
३ ज्वाला [कादंबरी] १॥।
४ लोकहितवादींची शतपत्रें ४
५ सात पाहुण्या [सात नाटिका] १॥।
६ दीपदान [लघुकथा] १॥
७ अंतर [कादंबरी] १॥।
८ यौवन [लघुकथा] १॥।
९ कल्चर्ड मोती [लघुकथा] २
१० शूर अबला [चरित्रे] ॥
११ बिंदूची कथा [कादंबरी] ३

ગુજરાતી પુસ્તકોની યાદી

૧. શ્રીમદ્‌ભગવદ્‌ ગીતા

ટીકા લેખક પં. શ્રી. દા. સાતવળેકર ગીતાલંકાર આ ગીતાના ૧૮ અધ્યાય બે પુસ્તકોમાં આવી જાય છે.

કિંમત ૧૨ાા. ટ. ખ. ૧ાા. વી. પી.થી. ૧૪ાા.

૨. સંસ્કૃત સ્વયં શિક્ષક

(સંસ્કૃત ભાષાનો અભ્યાસ કરવાનો સહેલો ઉપાય)

	કિંમત	ટ. ખ.
ભાગ ૧ થી ૬ દરેક ભાગની	૧- ૦૦	૦-૬૦
સૂર્ય નમસ્કાર	૦-૧૨-૦	૦-૫-૦
,, ,, ચિત્રપટ	૦- ૪-૦	૦-૧-૦
સૂર્યભેદન વ્યાયામ	૦-૧૨-૦	૦- ૫૦
યજુર્વેદ અધ્યાય ૪૦ ઇશોપનિષદ્‌	૨- ૮-૦	૦- ૭-૦
કઠોપનિષદ્‌	૧- ૮૦૦	૬૦
વેદમાં રોગજંતુ શાસ્ત્ર	૦- ૮-૦	૦- ૫-૦
ભારત વર્ષના હિંદુસમ્રાટ	૧ ૦-૦	૦- ૫-૦
વૈદિક સ્વરાજ્ય મહિમા	૦-૧૨-૦	૦- ૫૦
યજ્ઞોપવિત સંસ્કાર રહસ્ય	૩- ૦-૦	૦- ૮૦
વેદામૃત મોટું પુસ્તક	૩- ૦૦	૦-૧૨૦
વેદામૃત પ્રચારાર્થ નાનું પુસ્તક	૦- ૪-૦	૦- ૬૦
સાવકાર સૂત્રો	૦ ૧૪-૦	૦- ૫૦
પૃથ્વીપરનું અમૃત ગાયનું દૂધ	૦- ૮-૦	૦- ૫૦
ભારત	૧- ૦૦	૦- ૬-૦

પ્રાચીન વેદશાસ્ત્રનાં રહસ્યને ગુજરાતી ભાષામાં રજૂ કરતું માસિક **'વેદ સંદેશ'** -વાર્ષિક લવાજમ રૂ. ૫) વી. પી. થી રૂ. ૫ાાઽ

—:०.—

संस्कृत पुस्तक

कुमुदिनी चंद्रः मूल्य रु ४ डा. व्य. ।॥

—•:-:•—

List of English books

BHAGAWADGITA

Chapter 1 to 3	Price Rs. 4/-	Postage	Ans	12
,, 4 & 5	,, ,, 3/-	,,	,,	10
,, 6	,, ,, 1-8	,,	,,	7
,, 7 & 8	,, ,, 2/-	,,	,,	8
,, 9 & 10	,, ,, 2	,,	,,	8
,, 11 th	,, ,, 2	,,	,,	8

SURYA NAMASKAR English by--Shrimant Raja Saheb of Aundh Price Rs. 1-0 0 P. As 10

BHARAT (India as Seen & known by Foreigners)

Price Rs. 2- Postage As. I0.

Shivaji's Letter to Jaysinh As, 4 Postage As 5.

મંત્રી— સ્વાધ્યાય-મંડળ, ભારત મુદ્રણાલય, 'આનંદાઆશ્રમ' કિલ્લા-પારડી (જિ. સૂરત)

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

वैदिकधर्म

सहसंपादक
श्री महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

वार्षिक मूल्य म. आ से ५) रु.   वी पी से ५॥) रु. विदेशके ६॥) रु.

विषयानुक्रमणिका

संस्कृत-परीक्षा केन्द्रोंके प्रमाणपत्र वितरणोत्सव

• • • • • • •

१ श्री समर्थाश्रम पोतंगल (जि. निजामाबाद) का प्रमाणपत्र वितरणोत्सव माघवद्यनवमी बुधवारको प्रात. ७॥ बजेसे प्रारम्भ हुआ। १. ईशस्तवन। २ - ध्वज वंदन। ३ - सूर्यनमस्कार। ४ - योगासन। ५. व्यायाम एवं ६- दासबोधके पारायणका कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। योगासनके समय छात्रोंद्वारा जब पद्मासनका प्रदर्शन किया जा रहा था तब उनका छायाचित्र लिया गया।

इस अवसरपर काँग्रेसके अध्यक्ष श्री गिरिराव सा० तथा आश्रमके अध्यक्ष श्री विश्वनाथ महाराज के समर्थ रामदास स्वामीजीके जीवन चरित्र पर एवं संस्कृत भाषाके महत्व पर अत्यन्त उद्‌बोधक भाषण हुए।

सायंकाल ५ बजे श्री कृष्णरावजी का 'विद्याके महत्व' पर भाषण हुआ तथा संस्कृत परीक्षाओंमें सर्व प्रथम आनेवाले परीक्षार्थीको चांदीका कोई उपहार पुरस्कार रूपमें देनेकी घोषणा की। द्वितीय पुरस्कार उस छात्रको दीजानेकी घोषणा की जो समर्थ रामदास स्वामीजीके जीवनपर अच्छा प्रवचन कर सके।

अन्तमें केन्द्र व्यवस्थापक श्री नारायण स्वामीजी ने पूरे वर्षका विवरण पढकर सुनाया और आशा व्यक्त की कि आगामी परीक्षाओंमें और भी अधिक प्रगति हो सकेगी।

२ आणंद

आणन्द (पायोनियर) केन्द्रमें प्रजातंत्र दिवसके उपलक्ष्यमें एक उत्सव मनाया गया जिसमें आणंदके डी. डी. सी. महोदय श्री देसाई साहब के करकमलोंसे संस्कृत भाषा की परीक्षाओंमें उत्तीर्ण करीब ७० विद्यार्थियोंको प्रमाणपत्र वितरित किये गये। अध्यक्ष महोदयने केन्द्रकी उन्नति चाहते हुए संस्कृत प्रचारकी प्रेरणा दी। आगामी परीक्षाओंके " संस्कृत वर्ग " नये सत्रसे चालू हैं। श्री सुबोधचन्द्र स्नातक एवं श्री महेन्द्र त्रिवेदी उत्साह पूर्वक वर्गोंका संचालन करनेमें दत्तचित्त हैं श्री शंकरभाई पटेल प्रधानाध्यापक भी इस कार्यको उत्साहित करते रहते हैं।

३ अजमेर

अजमेरके केन्द्र व्यवस्थापक श्री रामचन्द्रजी आर्य मुसाफिर बडे परिश्रम एवं मनोयोगसे संस्कृत प्रचारका कार्य आगे बढा रहे हैं। उत्तीर्ण परीक्षार्थियोंके प्रमाणपत्र वितरित करनेके लिये अजमेरमें बडे उत्साहसे समारम्भ हुआ। इस अवसरपर आर्यजगत्के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० सूर्यदेवजी एम. ए. प्रधानाध्यापक डी ए. वी. हाईस्कूलने अध्यक्षपदसे जो सारगर्भित भाषण दिया उसका सारांश निम्न लिखित है— 'संस्कृत भाषा प्रचार समिति पारडीकी परीक्षाओंमें उत्तीर्ण हुए परीक्षार्थियोंको प्रमाणपत्र देते हुए मुझे अत्यन्त आनन्द हो रहा है। महर्षि दयानन्द का यह स्वप्न कि संस्कृत भारतकी प्रमुख भाषा हो, आज सत्य होता दिखाई दे रहा है। इस कार्यमें श्री पं. रामचन्द्रजी आर्य मुसाफिरका अनवरत परिश्रम एवं अदम्य उत्साह देखकर बडी प्रसन्नता होती है। श्रीमती गुलाबदेवीजी ने अपनी पाठशालामें इन परीक्षाओंको स्थान देकर एक आदर्श उपस्थित किया है। आप ही के प्रयत्नोंके परिणाम स्वरूप इन परीक्षाओंमें सम्मिलित होनेवाले परीक्षार्थियोंमें कन्याओंकी संख्या सबसे अधिक है। अन्तमें आपने कहा कि 'जबतक गंगा और यमुनाकी पवित्र धारा भारतमें बहती है तथा जबतक हिमालय और विन्ध्याचल संसारमें अपना मस्तक ऊंचा किये हुए खडे हैं उस समय तक संस्कृत भाषा जो वस्तुतः देवभाषा है— का अजस्र प्रवाह भारतवर्षमें बहता रहेगा।'

नगरके अन्य प्रतिष्ठित विद्वान भी इस अवसरपर उपस्थित थे।

४ विजापुर

विजापूरके केन्द्र व्यवस्थापक श्री पद्मनाभाचार्य मठने अपने केन्द्रके प्रमाण पत्र वितरणोत्सवके वृत्त निम्न प्रकारसे भेजे हैं—

विजापूर केन्द्रका प्रमाणपत्र वितरणोत्सव स्थानीय जयश्री थिएटरमें बडे उत्साहके साथ सम्पन्न हुआ। थिएटरके

(आगे पृष्ठ २१६ देखिये)

वर्ष ३३ अंक ८

वैदिक धर्म

क्रमांक ४४

श्रावण, विक्रम संवत् २००९, अगस्त १९५२

स्वावलम्बन

पर ऋणा सावीरध मत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम्।
अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषास आ नो जीवान् वरुण तासु शाधि॥

ऋ. २।२८।९

(ऋणा परा सावीः) ऋणोंको दूर कर, (अथ मत्कृतानि) और मेरे द्वारा किये गये ऋण भी दूर कर। हे राजन् वरुण ! (अहं अन्यकृतेन मा भोजं) मैं दूसरोंसे किया नहीं खाऊंगा। क्योंकि (भूयसीः उषास. अव्युष्टा इत नु) अभी बहुतसे उषःकाल आनेवाले हैं और उसमें हम (जीवान्) जीवित रहेंगे। (तासु न आशाधि) उनमें हमें उत्तम शिक्षा प्रदान कर।

कर्ज न करना चाहिये। यदि कर्ज हो तो उसे शीघ्र चुका देना चाहिये। स्वयं धनोपार्जन करे और उसका उपयोग करे। दूसरेके प्राप्त किये धनका उपयोग न करे। हमारी आयुके अभी बहुतसे दिन आनेवाले हैं; अतः उत्तम शिक्षा प्राप्त करे तथा उस ज्ञानका उपयोग करके श्रेष्ठ जीवन बितावे।

प्रमुख श्री भालचन्द्र परशुराम जोशी के करकमलों द्वारा प्रमाणपत्र वितरणका कार्य सम्पादित हुआ। अच्छे अङ्क प्राप्त करके उत्तीर्ण होनेवाले परीक्षार्थियोंको विशेष रूपसे पारितोषिक देकर उत्साहित किया गया।

अन्तमें केन्द्र व्यवस्थापक महोदयने वार्षिक विवरण पढ कर सुनाया तथा आगत महानुभावोंको धन्यवाद प्रदानकर उत्सव समाप्तिकी घोषणा की।

५ सूरत

हरिपरा सार्वजनिक हाइस्कूलमें प्राध्यापक श्री रजनीकान्तजी की अध्यक्षतामें एक समारम्भ हुआ। अप्रैल सन १९५२ ई. की संस्कृत परीक्षाओंमें भारतभरके केन्द्रोंमें प्रारम्भिणी परीक्षामें सर्व प्रथम आनेवाले परीक्षार्थी श्री सुरेशचन्द्र ठाकोरदास दलाल (आयु १८ वर्ष) को विशेष पारितोषिक प्रदान किया गया। इसी अवसरपर अन्य परीक्षार्थियोंको भी उनके प्रमाणपत्र दिये गये।

केन्द्र व्यवस्थापक श्री नृसिंहरामजी उपाध्याय ने संस्कृतभाषा प्रचारकी आवश्यकता पर प्रकाश डाला तथा विवरण सुनाया। अन्तमें श्री नटवरलालजी खान साहबने सर्व प्रथम आये हुए परीक्षार्थीको पारितोषिक दिया एव आगत सज्जनोंको धन्यवाद देकर सभा विसर्जित की।

६ पटियाला

पटियाला केन्द्रका प्रमाणपत्र वितरणोत्सव बडे समारोहके साथ सम्पन्न हुआ। दो हजार नरनारियोंकी उपस्थितिमें श्री प्रो० दुर्गादास कपिला एम. ए. मू. पू. वाइस प्रिन्सिपल महेन्द्रा कॉलेज पटियालाने अध्यक्षताका आसन सुशोभित किया तथा उत्तीर्ण परीक्षार्थियोंको प्रमाणपत्र दिये। विशेष योग्यतासे उत्तीर्ण होनेवाले छात्रोंको विशेष पारितोषिक दिये गये। इस अवसरपर छात्राओंने गीताका द्वितीय अध्याय सम्मिलित स्वरमें मौखिक सस्वर सुनाया। इससे जनता बहुत प्रभावित हुई।

केन्द्र व्यवस्थापक श्री विद्यारत्नजी विद्यालङ्कार अत्यन्त उत्साह पूर्वक संस्कृत प्रचारके लिये प्रयत्नशील है। उन्हींके सत्प्रयत्नोंका यह परिणाम है कि वहाँका कार्य उत्तरोत्तर खूब प्रगति करता जा रहा है।

७ आष्टी

दिनाङ्क १२-६-५२ ई. को आष्टी केन्द्रमें प्रमाणपत्र वितरणका कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। माध्यमिक पाठशालामें तालुकाधिकारी (मामलेतदार) की अध्यक्षतामें यह समारम्भ मनाया गया। इस कार्यमें स्थानीय शिक्षणालयके मुख्याध्यापक महोदयका पूरापूरा सहयोग प्राप्त हुआ। उन्होंने प्रौढोंको भी परीक्षा देनेके लिये उत्साहित किया। छः वक्ताओंके भाषण हुए। अन्तमें आये हुए सज्जनोंका आभार प्रदर्शित करते हुए केन्द्र व्य. श्री दिगंबरराव विनायकराव काटेकर वकील ने सभा विसर्जित की।

८ वडनगर

संस्कृत भाषा प्रचार समिति वडनगरने प्रचार कार्यकी अभिवृद्धिकी दृष्टिसे निम्न प्रकारकी योजना कार्यान्वित करनेका विचार किया है—

वडनगर एवं उसके आसपासके गाओंमें संस्कृतका प्रचार हो तथा वडनगरमें एक व्यायामशाला और गौशालाकी भी स्थापना हो तो उत्तम, यह सोचकर उक्त योजनाको अस्तित्वमें लाया जा रहा है। इसके लिये प्रत्येक भारतीय भाई बहनोंसे निवेदन किया गया है कि वे अपनी प्रत्येक सहायता दें।

केवल एक आना देनेपर समितिका वार्षिक सामान्य सभासद बना जा सकता है। एक रुपया देनेवाला असाधारण सभासद समितिका आवकजावक देखनेका अधिकारी होगा। सवापांच रुपये देनेवाले महानुभाव समितिके स्थायी संरक्षक गिने जावेंगे। इसके अतिरिक्त उक्त समितिके आश्रयदाताके रूपमें अनेक नरेश, मिलमालिक, सेठसाहुकार, साधु, सन्त, महन्तके सहयोगकी भी बहुत आशा है।

आगामी परीक्षाओंके लिये वडनगरके केन्द्र व्य. श्री विनुभाई पी. उपाध्याय बडी योग्यता एवं लगनके साथ जुटे हुए हैं। आप अपनी योजनाको विशाल रूपमें सफल करनेके लिये कृतसंकल्प हैं।

(सूचना— कुम्भकोणम्, मण्डलेश्वर, चान्दोद, बडेकिल, भरुच, साभरला आदि केन्द्रोंके वृत्तान्त आगामी अङ्कमें प्रकाशित होंगे।)

→***←

भारतीय संस्कृतिका स्वरूप

[लेखांक १५]

(लेखक— श्री पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

● ● ● ● ● ● ●

बलीकी साम्राज्यशाही

राष्ट्रीय स्वयंसेवक दल

अबतकके लेखोंमें हमने यह देखा कि कुमारोंकी तैयारी बचपनसे की जाती थी और इस तैयारीमें राष्ट्र-रक्षाके शिक्षणका भी समावेश किया जाता था। उपनयन संस्कार एक प्रकारसे 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ' में प्रविष्ट होनेका संस्कार हुआ करता था। इस संस्कारके मुहूर्तपर उस बटुको शस्त्रास्त्र दिये जाते थे और उन्हें चलानेकी शिक्षा भी दी जाती थी। आजकल हम बटुसे कहते हैं कि शस्त्रास्त्रोंको स्पर्श न करो; किन्तु कश्यप ऋषिके आश्रममें बटुको भिक्षामें शस्त्रास्त्रोंकी ही भिक्षा मिली थी और उससे कहा गया था कि 'इन शस्त्रास्त्रोंका प्रयोग करके राष्ट्रके शत्रुओंका विनाश कर' अर्वाचीन एवं प्राचीन युगमें कितना परिवर्तन हो गया है! अतएव स्वसंरक्षणकी क्षमता हममें आज कम हो गई है जब कि उस युगमें यह खूब थी।

वाल्मीकीय रामायणमें भी हम देखते हैं कि उस समयके तरुण 'रावणवधोद्यत' (रावणके साम्राज्यको नष्ट करनेके लिये सिद्ध) बनाये गये थे। यह समस्त कार्य ऋषियोंके आश्रमोंमें हुआ करता था। इस प्रकार यह राष्ट्रीय शिक्षण उस समय दिया जाता था और इसीलिये उस समय पराक्रमी वीर पैदा हुआ करते थे। उस शिक्षणसे एक विशिष्ट परम्परा निर्माण हुआ करती थी। इस विषयमें गणपतिके चरित्रपर हमने दृष्टिपात किया है। अब हम बटु वामनके चरित्रपर विचार करेंगे।

बलीका साम्राज्य

बलीका साम्राज्य अत्यन्त प्राचीनकालमें इस देशपर था। यह असुर था— असीरियन देशका रहनेवाला। इसने अपना अधिराज्य यहाँ स्थापित किया। इसने स्वयं वैदिक धर्मको स्वीकार किया तथा यज्ञ यागादि करके ब्राह्मण, साधु, संन्यासी आदिके सत्कारको खूब बढाया! इस कारण साम्राज्यके विरुद्ध आन्दोलन करनेवाला वर्ग शान्त रहा। आन्दोलन करनेवाले शान्त वर्गके रहनेपर साम्राज्यको स्थिर हुआ ही समझना चाहिये! इस तत्त्वको बलिने जान लिया और इसीपर आचरण भी किया!!!

मुगल बादशाहोंमें जिस प्रकार अकबर बादशाह हुआ और उसके राज्यमें जिस प्रकार हिन्दुओंको स्वस्थता प्राप्त हुई तथा मुगल साम्राज्यके प्रति अपनेपनेका अनुभव हुआ उसी प्रकार बलिके साम्राज्यके प्रति भी हुआ। बली वैदिकधर्मी बना, यज्ञ याग करने लगा, वेद शास्त्रोंके अध्ययनको बढावा देने लगा, देवोंके महोत्सव करने लगा। किसी आर्य राजासे भी अधिक वैदिक धर्मके प्रति इसका आदर बढता हुआ दिखाई दिया। इस कारण ब्राह्मण और संन्यासी बडे सन्तुष्ट हुए और बलिका साम्राज्य स्थिर हुआ सा प्रतीत होने लगा!!!

लोग कहने लगे कि बलि राजा तो वैदिकधर्मी ही है। यज्ञ याग करता है, धार्मिक कृत्योंको प्रोत्साहन देता है; अतः इसका साम्राज्य बडा अच्छा है। 'बलिका राज्य आवे' कहावत आजतक इस देशमें प्रचलित है! इतना अधिक प्रभाव भारतीयोंके मनपर बलिने जमा दिया था। ऐसे इस प्रचण्ड सम्राट्के साम्राज्यको बटु वामनने उध्वस्त कर दिया था; अतः यह कोई साधारणसा कृत्य नहीं माना जाएगा।

इसके लिये हम एक उदाहरण लेंगे। अंग्रेज लोग यहाँ आकर हिन्दु धर्मकी दीक्षा लेकर और हिन्दु बनकर यदि

राज्य करते तथा पीताम्बर पहनकर व यज्ञ करके भोजन करते और हमारे देवोंके उत्सव मनाते तो बलिके समान हो वे हमें अपने लगते और हममेंसे अनेक भोले और धार्मिक लोग यह कहने लगते कि 'अंग्रेजोंका राज्य चिरस्थायी हो'। किन्तु अंग्रेज तो यहाँ 'विदेशी' के रूपमें रहे। इसलिये इनके प्रति शीघ्र घृणा हो गई। किन्तु बलिके राज्यके प्रति लोगोंमें घृणा उत्पन्न न होकर अपनापन रहा।

बलिका कपट

सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेवालोंको बलिका कपट दिखाई पड सकता है। इधर बलि यज्ञ किया करता था और ब्राह्मणोंको दक्षिणा दिया करता था, यह बात सच है; किन्तु साम्राज्यके समस्त वरिष्ठ अधिकारी असुर ही सर्वत्र थे। सम्पूर्ण साम्राज्ययन्त्र असुर प्रधान बना हुआ था। ऐसा एक भी अधिकारका स्थान नहीं था जहाँपर असुर न हों। इस कारण एतद्देशीय तरुण बेकार बनते जा रहे थे और असुरगण अधिकारारूढ एवं ऐश्वर्य सम्पन्न बनते जा रहे थे।

स्त्रियोंकी तलमलाहट

इस प्रकार बलिका यह साम्राज्य आर्योंका घात करता हुआ बढ रहा था। साधारणतः देखनेवालोंको ऐसा आभास होता था कि इसके राज्यमें वैदिक-यज्ञ पद्धतिकी विजय हो रही है। अतः इस साम्राज्यके विरुद्ध आन्दोलन होना एक कठिन कार्य बन गया था। बेकारीका प्रभाव घरके चूल्हेपर सबसे प्रथम हुआ करता है। इस सिद्धान्तके अनुसार स्त्रियोंमें इस दीन हीन अवस्थाका अनुभव सर्व प्रथम हुआ।

यत्सपत्नैर्हृतश्रीणां च्यावितानां स्वधामतः ॥१२॥
तान्विनिर्जित्य समरे दुर्मदान्सुरर्षभान् ।
प्रतिलब्धजयश्रीभिः पुत्रैरिच्छस्युपासितुम् ॥१३॥
(श्री. भाग. ८।१७)

बलिका राज्य होनेसे पूर्व हम कितने सम्पन्न थे और आज किस प्रकार दरिद्र होते जा रहे हैं, इसकी अनुभूति सर्व प्रथम स्त्रियोंमें हुई और परिणाम स्वरूप घरके बालकोंमें स्त्रियोंद्वारा बलि साम्राज्यके विरुद्ध आन्दोलनके बीज बोने सुरू हो गये। धीरे धीरे तरुणोंमें यह बात फैली और गुरुकुलोंमें भी इसका प्रसार हो गया। हजारों युवक विद्रोहकी भावनासे भर गये और उनमें यह बात घर कर गई कि बलिका साम्राज्य विनष्ट करके आर्य साम्राज्यकी स्थापना होनी चाहिये। इन युवकोंका नेता था बटु वामन।

गणेशके समान वामन भी बटु ही था। १६ वर्षके अन्दर ही इसकी आयु थी और इसी आयुके अन्य तरुण इस क्रांति योजनामें सम्मिलित हुए।

अन्ततः एक दिन निश्चित किया गया। उस दिन वे क्रान्तिकारी बटु यज्ञ मण्डपमें आने लगे। किसीने दर्भमें शस्त्रोंको रखा, किसीने गोमुखीमें, किसीने कमण्डलुमें, किसीने दुशालेमें। इस प्रकार शस्त्रोंको छिपाये हुए ये ब्राह्मण कुमार यज्ञ मण्डपमें जाकर बैठ गये!!!

इधर ब्राह्मण विद्वान् यज्ञ कार्यमें व्यस्त थे। वयस्क ब्राह्मणोंको बटु कुमारोंके इस षडयन्त्रका पता तक न था। इधर हजारों तरुण अपने इस षड्यन्त्रको सफल बनानेके लिये यज्ञ मण्डपमें सिद्ध बैठे हुए थे। यह सब कुछ ठीक-ठाक हो जानेपर बटु वामन निःशस्त्र स्थितिमें यज्ञ मण्डपके अन्दर प्रविष्ट हुआ। उस समयका वह उत्साह अनिर्वचनीय था।

आजके ही दिन इतनी बडी संख्यामें ये ब्राह्मण कुमार यज्ञ मण्डपमें किसलिये आये हैं? इसका विचार कोई भी न कर सका। यज्ञ कर्म व्यवस्थित रूपसे चल रहा था; अत. सबका ध्यान उसी ओर था। यज्ञशालामें प्रविष्ट हुए हुए बटु कुमारोंका ध्यान बलिपर और वामनकी गति विधियोंकी ओर था। इतनेमें बटु वामन आया और बलिराजासे थोडीसी जमीन मांगने लगा। बटुकी अपेक्षित भूमिका दान करनेके लिये और दानका उदक बटु वामनके हाथपर छोडनेके लिये बलि तैयार हो गया।

इतनेमें वामनने चतुराईसे बलिको नीचे पटककर उसकी छातीपर वह बैठ गया और उसे उसने पाशसे बांध लिया। इसी अवसरपर यज्ञ मण्डपके सभी तरुणोंने अपने अपने शस्त्रास्त्र बाहर निकाल लिये और एक साथ सबने धावा बोल दिया। बलिका सेनापति भी वहाँपर था।

इत्यायुधानि जगृहुर्बलेरनुचराऽसुराः।
प्रहस्यानुचरा विष्णोः प्रत्यषेधन्नुदायुधाः ॥ १५॥
श्री. भाग २१

सेनापति अपनी असुर सेना ले आया और इस प्रकार बहुत देरतक घमासान मचता रहा। इसमें बलिका पराभव हुआ और वामनने उसे कोंकणमें किसी स्थानपर लेजाकर नजरकैदके रूपमें बन्दी बना दिया।

बलिको कोंकणमें ही नजरबन्द करनेका कारण यह था कि एक बार पहले भी उसे पराजित कर असुर देशमें भेज दिया था; किन्तु उसने वहाँ जाकर पुनः अपनी सेना खडी कर ली और उपर्युक्त साम्राज्यको पुनः जमा लिया। इसकी पुनरुक्ति न हो, इसलिये वामनने उसे अपने देशमें जानेका अवसर ही न मिले, यह बात ध्यानमें रखकर यहीं नजरबन्द रखा। निःसन्देह उसने यह कार्य अत्यन्त बुद्धि-मत्ता पूर्ण किया। पूर्व इतिहाससे इस प्रकार शिक्षा ग्रहण की जानी चाहिये।

इस प्रकारका यह बटु वामनकी राज्य क्रान्तिका इतिहास है। इसका पूरा वर्णन श्रीमद् भागवत्‌में अत्यन्त विस्तार-पूर्वक दिया है। जिसे विस्तारपूर्वक देखना हो वह भागवत् उठाकर देखे। शस्त्रास्त्र लेकर बटुकुमार किस प्रकारसे यज्ञ मण्डपमें प्रविष्ट हुए इसका सम्पूर्ण वर्णन वहाँ दिया हुआ है।

आजकल लोग यह समझते हैं कि अकेले वामनने बलिका विनाश किया। यह असत्य है। वामन अकेला ही होता और उसे तरुणोंकी सहायता न होती तो उससे कुछ भी न बन पाता। तात्कालीन हजारों युवक बलिके विरुद्ध इस षड्यन्त्रमें सम्मिलित थे, इसीलिये वामनको सफलता मिली। इतने युवकोंको क्रान्तिके लिये तैयार करनेमें जिस तैयारीकी आवश्यकता थी वह पूर्णतः की गई थी।

बलिके चित्र

इस कथामें इस सम्पूर्ण तैयारीके लिये अपेक्षित वर्णन पूरा पूरा विद्यमान है; किन्तु उस ओर कोई ध्यान नहीं देता। सभी कथा और कीर्तनकार उसके अद्भुत रसकी ओर ही जनताका चित्त आकर्षित करते हैं। यही कारण है कि मुख्य वस्तुकी ओर ध्यान नहीं जाता। वामन अवतारके चित्र इसी अद्भुत रसके प्रदर्शक हैं। अकेला वामन बलिके मस्तकपर पैर रखकर खडा है और बलि सबकुछ सहन कर रहा है। इसी प्रकारके चित्र आजके युवकोंकी आंखोंके सामने हैं। इसीलिये इस कथामें निहित राजनीतिकी ओर किसीका भी ध्यान नहीं जाता।

क्रान्ति विषयक अज्ञान

वामनका जन्म होनेसे पूर्व स्त्रियोंके मनमें होनेवाली तिलमिलाहट, शूर पुत्र उत्पन्न हों और उन्हें पूर्व स्थिति पुनः अपने पराक्रम द्वारा प्राप्त हो आदि भावना, वामनके संगठन कार्य और युवकोंके यज्ञ मण्डपमें शस्त्र छिपाकर प्रवेश करना आदि सभी बातोंका वर्णन श्रीमद् भागवतकार तो बराबर करते हैं, किन्तु चित्रकारों अथवा कथाकारोंको इस बातका पता ही नहीं है।

सम्राट् बलिके सैनिक इस अवसरपर चुप न थे, उनपर मात करनी है, यह बात वामन अच्छीतरह जानता था और इसीलिये उसने यज्ञ मण्डपके अन्दर और बाहर पूरी पूरी तैयारी कर रखी थी। इतनी तैयारी होनेके लिये जनतामें कितनी पूर्व तैयारी या आन्दोलन हुआ होगा, इसका अनुमान ही किया जा सकता है। अर्थात् इस समय बहुत बडे पैमानेपर आन्दोलन हुआ था।

वामनावतारके समय की गई क्रान्तिकी हलचल बडी संघर्ष पूर्ण हलचल थी। औरंगजेबके विरुद्ध क्रान्ति करना सरल है, किन्तु अकबरके विरुद्ध क्रान्ति करना बहुत कठिन। कर्जनके विरुद्ध आन्दोलन करना आसान है किन्तु रिपिनके विरुद्ध बोलना बडा कठिन। इसी प्रकार रावणके विरुद्ध हलचल करना सरल था किन्तु बलिके विरुद्ध कुछ करना बडा कठिन काम था। यही कार्य वामनने किया और इसीका महत्त्वपूर्ण भाग इस कथामें निर्दिष्ट है।

तेजस्वी शिक्षा

वामनके सदृश चढती उमरके तरुण आन्दोलनमें हिस्सा लिया करते थे और इस प्रकार आन्दोलनमें हिस्सा लेनेकी हिम्मत उस युगमें उत्पन्न होती थी, क्योंकि तत्कालीन बाल-कोंकी शिक्षा ही ऐसी होती थी। हमने गणेश एवं कार्तिकेयके चरित्रोंपर विचार किया है। वे भी अल्पवयस्क कुमार ही थे और आज हमने बटु वामनका चरित्र भी देखा। यह तो 'बटु' नामसे ही प्रसिद्ध है।

महाराज शिवाजीने जिस आयुसे स्वराज्यका आन्दोलन आरम्भ किया वह कुमार अवस्था ही थी। इस आयुमें

क्रान्ति भावनाको जागृत करनेकी परिस्थिति होनी चाहिये और तदनुकूल शिक्षाकी व्यवस्था भी होनी चाहिये। ऐसी व्यवस्था होनेपर वामन जैसे वीर बटु निर्माण हो सकते हैं। आजके बटुकी तुलना वामनसे किस प्रकार की जा सकती है? वामनके समकालीन शिक्षा-व्यवस्था सर्व प्रथम हमें अपने देशमें करनी चाहिये।

वामनकी परिस्थिति बडी बिकट थी। क्योंकि अधिकांश आसजन बलिके जालमें फंसे हुए थे। जिस प्रकार महाराज शिवाजीके पिता शहाजी यवनोंके सरदार एवं उनके साम्राज्यका हित करनेवाले थे और स्वयं शिवाजी हिन्दु साम्राज्यकी स्थापनामें प्रयत्नशील। लगभग ऐसी ही परिस्थिति वामनके सामने थी। जैसे मिर्जा राजा जयसिंह जैसे कर्तबगार व्यक्ति यवनोंका ऐश्वर्य बढानेमें अपना जीवन खपा रहे थे उसी प्रकार अधिकांश आप्तजन बलिका ऐश्वर्य बढानेमें संलग्न थे। अतः क्रान्तिका समस्त भार तरुणोंपर ही आ पडा था। वामनका यह क्रान्तिवृत्त युवकोंके लिये अभ्यसनीय है। अवश्यही इस चरित्रसे युवकोंका उत्साह बढेगा।

थोडे ही दिनों पूर्व जिस प्रकार राव साहब और राव बहादुर तो अंग्रेजोंके हितैषी हुआ करते थे तथा उनके लडके सत्याग्रह करनेवाले और अंग्रेजोंका राज्य उलटनेवाले होते थे उसी प्रकार वामनके युगमें भी था। इससे यह बात सहज ही ध्यानमें आ सकती है कि वामनने कितनी प्रतिकूल परिस्थितिमें इस क्रान्तिका कार्य किया। भगवान् श्रीकृष्णको पाण्डवोंकी सेना एवं अर्जुन जैसे योद्धा मिले थे। भगवान् रामचन्द्रको सुग्रीवकी सुसज्जित सेना मिल गई थी; किन्तु वामनको अनुभवी तरुण पीढी स्वयं तैयार करनी पडी और उसके द्वारा सम्पूर्ण क्रान्ति सफल करनी पडी।

क्रान्तिका शैक्षणिक केन्द्र

वह इस प्रकारकी तैयारी कहाँ होती थी? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। 'गुरुकुल' नामकी शिक्षण संस्थायें तत्कालीन सर्वथा स्वतन्त्र शिक्षण संस्थायें थीं जो इन तरुणोंका निर्माण किया करती थीं। ये शिक्षण संस्थायें राजाके नियन्त्रणमें नहीं होती थीं। अतः वहाँका वातावरण सर्वथा स्वतन्त्र हुआ करता था जिससे ऐसे तेजस्वी तरुण निपजा करते थे। गणेश, विनायक, कार्तिकेय, वामन आदि सभी तरुण गुरुकुलोंमें ही तैयार हुए थे। ये सबके सब तारुण्यमें ही नेता बने और प्रसिद्धिको प्राप्त हुए। वैदिक संस्कृतिकी यह एक वर्णनीय विशेषता थी कि तत्कालीन शिक्षण संस्थायें सर्वथा स्वतन्त्र थीं। आज किसी भी देशमें शिक्षा विभाग इतना स्वतन्त्र नहीं है। राज्यशासनका वे एक अङ्ग बन गये हैं। राज्य शासनके लिये अपेक्षित तरुण ही आज उनमें तैयार किये जा रहे हैं जब कि वैदिक कालमें पवित्र, शुद्ध, स्वतन्त्र, तत्वज्ञाननिष्ठ गुरुकुल नामक शिक्षा संस्थाओंमें वैदिक युगके वे श्रेष्ठ तरुण निर्माण होते थे।

वामनका इस प्रकारका यह युग था। आजके युवकोंको वामनके चरित्रका मनन करना चाहिये।

[लेखांक १६]

स्त्रियोंकी सैनिक शिक्षा

स्त्री शिक्षा

अबतकके लेखोंमें तरुणपीढी किस प्रकार तैयार की जाती थी, इस विषयमें वैदिक पद्धतिका निरीक्षण हमने किया। अब हमें यह देखना है कि उस युगमें स्त्रियोंको किस प्रकार तैयार किया जाता था? प्राचीन कालमें जिस प्रकार सैंकडों वीर पुरुषोंके नाम हमारे सामने आते हैं उसी प्रकार स्त्रियोंके नाम भी इतिहासके प्राचीन पृष्ठोंपर अङ्कित हैं। काली, भवानी, अम्बिका, एकवीरा आदि सैंकडों स्त्रियाँ अपने शौर्यके कारण पूजाके योग्य स्थान प्राप्त कर चुकी हैं।

शस्त्रधारिणी स्त्रियाँ

समस्त पुरुष देव शस्त्रधारी हैं, किन्तु आश्चर्यकी बात तो यह है कि स्त्री रूपी देवता तो पुरुषोंसे भी अधिक शस्त्रोंको धारण करती हैं। पुरुष देवोंके चार या छः तक

हाथ हमें दिखाई देते हैं और उनमें उतने ही अस्त्र शस्त्र रहते हैं, किन्तु इन स्त्री रूपी देवताओंके अठारह अठारह या अट्ठाईस अट्ठाईस तक हाथ हमें दिखाई पडते हैं और उतने ही प्रकारके अस्त्रशस्त्र भी हम उनमें देखते हैं। पुरुष देवोंकी अपेक्षा स्त्री देवताओंके पास संरक्षक एवं शत्रु-विघातक शस्त्र अधिक हैं। इसके पीछे जो एक विशेष तत्व है वह यह है कि स्त्रियोंकी रक्षा अधिक सावधानीसे होनी चाहिये। अत. उनके लिये संरक्षण शक्ति अधिक अपेक्षित है और स्वसंरक्षणके साधन भी उसी अनुपातसे अपेक्षित है। पुरुषोंकी रक्षा भी होनी चाहिये, किन्तु स्त्रियोंकी रक्षा गुण्डोंसे होना अत्यावश्यक है। ऐसी शिक्षा स्त्रियोंको मिलनी ही चाहिये।

स्त्री-दल

गणेशने स्त्रियोंके सैनिक दलोंका संगठन किया था और उनके द्वारा उसने राष्ट्र संरक्षणका महान् कार्य भी करवा लिया था। इसी प्रकार अनेक वार स्त्रियोंने अपने दल बनाकर राष्ट्रकी रक्षाका कार्य पूर्ण किया है. यह सब हम इतिहासमें देखते हैं। इस विषयमें एक युवतीकी कथा ध्यान देने जैसी है।

खेल राजा

खेल नामका एक राजा था। सम्भवतः यह अफगान देशका राजा था। क्योंकि आज भी हम 'खेल' नामक प्रयोग सीमाप्रान्तीय अफगानी भाषामें पाते हैं।' झाकाखेल' 'इसाखेल' आदि नाम आज भी पठानोंमें प्रान्तिक नामोंके रूपमें प्राप्त होते हैं। वैदिक कालमें भी एक ऐसा ही कोई खेल नामका राजा था। उसके राज्यपर शत्रुओंने आक्रमण कर दिया। तब राजाका सेनापति अपनी सेनाके साथ शत्रुपर टूट पडा। किन्तु शत्रुका बल बहुत अधिक था, अत: उसका पूरी तरह पराभव हो गया और सारी सेना भाग निकली। ऐसी स्थितिमें राजाको बडी चिन्ता हुई।

राजकुमारी विश्पला

राजाकी यह अवस्था देख राजकुमारी विश्पलाने सामने आकर उससे कहा कि 'यह अवसर चिन्ता और शोक करनेका नहीं है, कुछ पराक्रम दिखानेका है। मैं सेनाका नेतृत्व ग्रहण कर शत्रुपर आक्रमण करनेके लिये जाती हूँ। आपको चिन्ता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।' राजाने उसे इस कार्यके लिये अनुमति दी और उसने सेनाका संगठन कर शत्रुपर आक्रमण कर दिया।

शत्रुका बल बहुत अधिक था। राजकुमारी विश्पलाने अपने प्राणोंकी बाजी लगा दी। किन्तु फिर भी उसकी एक न चली। इतना ही नहीं, अपितु युद्धमें उसकी एक टांग भी टूट गई और वह घायल होकर पराभूत स्थितिमें घर लौट आई। उसे लौटी हुई देखकर खेल बहुत ही चिन्तित हुआ और शोक करने लगा।

यह देख विश्पला कहने लगी— 'हे राजन्! यह समय शोक करनेका नहीं है। आप अपने वैद्योंको बुलाइये और मेरी टांग सुधरवा दीजिये। मैं खडी हो सकूं ऐसा उपचार करवाइये; जिससे मैं पुनः जाकर शत्रुपर आक्रमण कर सकूं' यह सुन राजाने अपने राज वैद्योंको बुलाकर उपचार आरम्भ कराया।

लोहेका पैर लगाया

खेल राजाके राज वैद्यने विश्पलाका टूटा हुआ पैर काट दिया। घाव अच्छे किये और उस स्थानपर लोहेका पैर लगाकर उसे युद्धमें जाने लायक बना दिया। ऋग्वेदमें इसका वर्णन इस प्रकारसे मिलता है—

आयसीं जंघां विश्पलायै अधत्तम्। ऋ. १।११७

'विश्पलाके लोहेकी टांग लगा दी' और उस विश्पलाने शत्रुपर पुनः आक्रमण कर दिया। वह विजयी होकर पुनः लौटी। ऋग्वेदके इस मन्त्रमें जो वर्णन मिलता है उससे तत्कालीन शस्त्रवैद्यकने कितनी प्रगति की थी, इसका उदाहरण मिलता है। जांघ काटकर, घाव अच्छे करके वहाँ लोहेकी टांग लगाना और उसे पुनः युद्धके योग्य बना देना यह सब शस्त्र वैद्यका चमत्कार ही है।

वीर स्त्रियां

किन्तु इस कथासे यह भी विदित हो सकता है कि वैदिक कालमें वीर युवतियोंको किस प्रकार इस योग्य बनाया जाता था। यह खेल राजाकी राजपुत्री थी। राजपुत्री होनेके कारण उसके पास साधनोंका पर्याप्त होना स्वाभाविक है। किन्तु अभी अभी कुछ समय पूर्व हमारे भारत वर्षमें कुछ ही दिनों पूर्व छोटे बडे मिलाकर लगभग ६०० राजा थे। उनमेंसे किसीकी भी पुत्री, वधू अथवा स्त्री ऐसी वीराङ्गना नहीं थी। एतादृश कल्पना भी किसीके मस्तिष्कमें न होगी।

अर्वाचीन युगमें झांसीकी महारानी लक्ष्मीबाईका नाम

वीराङ्गनाओंमें प्रसिद्ध है। उस समय अंग्रेजोंका मुकाबला करनेका पराक्रम उसने किया। प्राचीन युगमें दशरथकी रानी कैकेयी पतिके साथ युद्धक्षेत्रमें गई थी और उसने अपने पतिकी बहुत बडी सहायता उस समय की थी। किन्तु पुराणोंमें तो दैत्योंका निर्दलन करनेवाली अनेक वीर स्त्रियोंकी गाथायें भरी पडी हैं। इस दृष्टिसे उस युगमें और आजके युगमें आकाश-पातालका अन्तर दिखाई पड रहा है।

खल राजाकी पुत्री एकदम सेनापतित्वका उत्तरदायित्व भी सम्भाल लेती है। भयंकर घायल होनेपर भी उसका धैर्य नहीं टूटता। गणपति काश्मिराजाके राज्यमें एकदम स्त्रियोंका दल खडा कर लेता है और समयपर उनकी बहु मूल्य सहायता भी मिलती है। पुरुषोंके पराजित होनेपर स्त्रियाँ विजय प्राप्त करके दिखाती हैं। काली, चण्डी, चामुण्डा आदि देवियाँ प्रचण्ड सेनायें लेकर असुरोंपर आक्रमण करती हैं और उनकी सेनायें उध्वस्त कर डालती हैं। क्या ये बातें योंही सिद्ध हो सकी हैं?

अर्थात् यदि शस्त्रास्त्र चलानेका अभ्यास न हो, युद्ध विद्याकी जानकारी न हो, शत्रुओंसे टक्कर लेनेका अनुभव न हो तो क्या यह सम्भव है कि पर्दोंसे निकलकर एकदम इतना प्रचण्ड पराक्रम दिखाया जा सके? आज ऐसा पराक्रम दिखाना पुरुषोंके लिये भी एकदम आसान नहीं है। कॉलेजके युवकोंके दल बनाने के प्रस्ताव पास होने पर भी वे आज तक नहीं बन पाये। हम आज यह प्रत्यक्ष देख रहे हैं और इस युगमें स्त्रियाँ सेनापतिका कार्य भी कर सकती थीं। वे शत्रुओंके साथ डटकर युद्ध करती थीं और उन्हें पराजित कर दिया करती थीं। यह इतना कार्य पूर्व तैयारी हुए बिना नहीं हो सकता। इससे यह कहा जा सकता है कि वैदिक कालमें, बुद्धसे पूर्व स्त्रियोंको स्वसंरक्षण शिक्षा प्राप्त होती थी। अट्ठाईस अट्ठाईस शस्त्रोंका प्रयोग करनेवाली स्त्रियाँ उस युगमें थीं। सौभाग्यसे आज उनके वैसे चित्र लभ्य हैं। उनके अट्ठाईस हाथ ये यह समझने की अपेक्षा वे अट्ठाईस शस्त्रोंको चलाना जानती थीं, यह मानना विशेष सयुक्तिक है। यदि शस्त्रका प्रयोग करना न आवे तो नंगी तलवारसे अपने ही शरीर पर घाव हो जाय। तब फिर एकसे अधिक शस्त्रोंका होना और उनका चलाना आदि का वर्णन यही बात सिद्ध करता है कि उस समय शस्त्र चलानेकी पूरी पूरी शिक्षा स्त्रियोंको दी जाती थी।

वैदिक युगमें गार्गी, वाचक्नवी, वागाम्भृणी आदि स्त्रियाँ जिस प्रकार ब्रह्मज्ञानमें निष्णात थीं उसी प्रकार विश्पला जैसी स्त्रियाँ युद्धकलामें भी पूर्णतः निष्णात होती थीं। समय पडनेपर वे सेनापतिका काम भी सम्भाल लेती थीं और अपने अद्वितीय पराक्रमका आदर्श उपस्थित करती थी।

यूरोपमें 'जोन ऑफ आर्क' के गीत गाये जाते हैं। यह सब उचित है। किन्तु हमारे यहाँ विश्पला, काली, चामुण्डा आदि सैंकडो वीर स्त्रियाँ हुई और उनकी पूजा हिन्दु लोग आज भी करते हैं तथापि नई पीढी यह सब यथावत् स्मरण रखेगी, इसकी आशा नहीं है। यह बहुत चिन्तनीय है। किसी भी प्रकारसे क्यों न हो प्राचीन वीर स्त्रियोंका स्मरण तो चिरस्थायी होना ही चाहिये। उनका स्मरण भी आज हमारा तारण कर सकता है।

स्त्री एक शक्ति है।

हम स्त्रियोंको 'अबला' कहते हैं। किन्तु प्राचीन समयमें स्त्रियोंको 'शक्ति' समझा जाता था। स्त्रियोंमें कितनी शक्ति होती थी, यह बात विश्पला आदिके चरित्रोंसे स्पष्ट लक्षित हो जाती है। सचमुच स्त्रियाँ तो शक्ति रूप ही हैं। जैन और बौद्धोंने उन्हें दबाकर अबला बना दिया और आज वे अबला बन गई हैं। गुण्डे उन्हें भगाकर ले जावें और पुरुष चुपचाप बैठे देखते रहें, यही आजकी परिस्थिति बनी हुई है। जब स्त्रियाँ इस प्रकार शक्ति रूपिणि थीं तब पुरुष भी वीरभद्र थे। जब स्त्रियाँ इस प्रकार अबला बन गई तो पुरुष भी निर्बल हो गये हैं। स्त्रियां ही जब निर्बल होंगी तो उनकी सन्तानें सबल कैसे होंगी? निःसन्देह सन्तानें भी निर्बल ही होंगी। स्त्रियां सबल होंगी तो सन्तानें भी सबल होंगी।

वैदिक कालमें पुत्रको 'वीर' तथा पुत्रीको 'वीरा' कहा जाता था। ये शब्द ही बताते हैं कि सन्तानें कैसी बनानी चाहिये। पुत्र या पुत्री वीर होनी चाहिये। यह शब्द उनके शिक्षाकी व्यवस्था सिद्ध करता है। पुत्र वीर बने और पुत्री वीरा बने, ऐसी व्यवस्था उस युगमें अवश्य ही होगी। यदि वह न हुई तो किस प्रकार स्त्रियां 'शक्ति' बन सकती हैं? बिना शिक्षाविशेषकी व्यवस्थाके यह सम्भव

नहीं है कि स्वयमेव पुत्र या पुत्री शूर बन जांय। जिस युगमें स्त्रियोंको 'शक्ति' कहा जाता था और पुत्रोंको 'वीर' कहा जाता था उस युगमें उन्हें इसके अनुकूल शिक्षा भी अवश्य दी जाती होगी।

आज हम बडे प्रेमसे अपने पुत्रको 'गुलाम' कहते हैं। यह है आज का आदर्श। लडका सेवक बने, इसलिये प्रेमसे लडके को 'गुलाम' कहनेकी प्रथा पडी होगी। यवनों अथवा अंग्रेजोंकी सेवा करना ही इनका ध्येय होगा।

स्त्रीके वाचक 'पुरंध्रो, पुरंध्रि, पुरंधि' आदि शब्द हैं। इसका अर्थ 'पुरंधि पुरं धारयति' ऐसा है। नागरका संरक्षण एवं धारण करनेवाली, यह इसका अर्थ है। आज इसका अर्थ 'घरकी रक्षा करनेवाली' ऐसा करते हैं। यद्यपि मूल अर्थ नगर और पुर का धारण करनेवाली, ऐसा है। 'पुर' अथवा 'पुरी' शब्द बंबई और कलकत्ता जैसे बहुत बडे नगरोंके वाचक हैं। इतने बडे नगरोंकी रक्षा ये स्त्रियां किया करती थीं। अति प्राचीन युगमें नागरिक संरक्षणके कार्य स्त्रियां किया करतीं थीं और राष्ट्र संरक्षणका कार्य पुरुष किया करते थे, ऐसा प्रतीत होता है। इसी युगमें शस्त्रास्त्रोंकी तथा युद्ध की शिक्षा स्त्रियोंको भी दी जाती थी। इसी शिक्षाके कारण समय पडते ही स्त्रियां सेनापतिका भी कार्य कर लेती थीं और शत्रुको यह आह्वान देती थीं कि 'जो मेरा पराभव करेगा वह मेरा पति होगा'। महिषासुरने भवानी को जब यह सन्देश भेजा कि तू मेरी धर्मपत्नी हो तो इसके जवाबमें भवानीने उत्तर भिजवाया कि जो मेरा पराभव करेगा वह मेरा पति होगा। इस सन्देशमें कितनी उग्र वीरता है, यह पाठक देखें। इसी वीर कुमारीने उस राक्षसका विनाश किया है। ऐसा उत्तर देनेका धैर्य जिनमें है क्या उन्हें अबला कहा जा सकता है? स्त्रियोंको इस प्रकारके वीरताकी शिक्षा देनेकी व्यवस्था उस युगमें थी।

वीरा, पुरंधि, शक्ति

जन्मसे 'वीरा' नाम, युवावस्थामें 'पुरंधि' होनेका सामर्थ्य और विवाहित होनेपर 'शक्ति' शब्दका अन्वर्थक प्रयोग होना ध्यान देने जैसी बातें हैं। इसी प्रकार 'नारी' का अर्थ नेतृत्व करनेमें समर्थ, ऐसा होता है। इन सब शब्दोंपर विचार करनेपर यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि इस युगमें स्त्रियां अबला न होकर वे सचमुच सबला और शक्तिरूपिणी ही होती थीं। जीवित राष्ट्रकी स्त्रियोंको ऐसाही होना समुचित है। वे यदि सचमुच अबला होतीं तो उनसे किस प्रकार भला सबल सन्तानें हो सकती थीं और ऐसे निर्बलोंको 'आर्य' भी कौन कह सकता? स्त्रियोंको पहले आर्या कहा जाता था। क्या आर्या अबला हो सकती है?

स्त्रियोंके सामर्थ्य का उदाहरण देखना हो तो भगवान् शंकरके जीवनकी ओर दृष्टिपात करना चाहिये जो कि स्वयं महान पराक्रमी होते हुए भी पार्वती-शक्ति-के बिना वे कुछ भी नहीं कर पाते थे। यह आलङ्कारिक वर्णन स्त्रियों-के सामर्थ्यका वर्णन कर रहा है। स्त्रियोंको सच्चे अर्थोंमें शक्ति कहा जा सके, इस प्रकार की शिक्षा उस युगमें दी जाती थी।

ब्रह्मचर्येण कन्या युवान विन्दते पतिम्। अथर्व०

'ब्रह्मचर्यका पालन करके कन्या तरुण पतिको प्राप्त करती है'। इसमें स्त्रियोंके ब्रह्मचर्याश्रमका उल्लेख है। आज स्त्रियोंके ब्रह्मचर्यका लोप हो चुका है। तब स्त्रियोंका उपनयन हुआ करता था। उन्हें भी मेखलाबन्धन, दण्ड धारण और समिधा तोडने के लिये कुठार धारण आदि सब कुछ लडकोंके समान करना पडता था। आज भी स्त्रियां कमरपट्टा बांधती हैं। वह सोनेका रहता है और शोभामात्र उसका प्रयोजन रहता है। स्त्रियोंका उपवीत न करके उनका उपवीत आज पुरुषोंको धारण करना पडता है।

हमारे धर्मके समान ही पारसी धर्म है। पारसियोंकी स्त्रियां आज भी यज्ञोपवीत धारण करती हैं। किन्तु हमने यह प्रथा बंद कर दी और स्त्रियोंका यह यज्ञोपवीत पुरुषोंके कन्धों पर रख दिया गया। इस प्रकार जो स्त्रियाँ 'शक्ति' थीं वे 'अबला' बना दी गईं।

प्राचीन संस्कार कोई ज्यों का त्यों करे या न करे, किन्तु उसमें शक्ति सम्पादन का जो मार्ग निर्दिष्ट था उसका अनु-सरण तो आज हमें करना चाहिये। भारतीय संस्कृतिमें स्त्रियोंका स्वरूप 'शक्ति' है। वे पुनः तद्रूप बने ऐसी शिक्षा आज यदि दी जाय तो वह सर्वथा उचित ही है।

स्त्री शिक्षाका यही कार्यक्रम है।

अनुवादक- महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

हमारा आहार—जिसपर हम जीते हैं

लेखक— श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती

हम लोग जो भोजन करते हैं वह अधिकतर नाइट्रोजन्स तत्वों, प्रोटीन्स, चर्बीली चीजों या हाइड्रोकार्बन्स, जैसे घी आदि अथवा कार्बोहाइड्रेट्स वस्तुओं जैसे चावल चीनी आदि का होता है। प्रोटीन्स-युक्त पदार्थोंसे शरीरमें स्फूर्ति होती है। इनके अलावा हमारे भोजनमें अनेकों प्रकारके क्षार भी होते हैं। अनेकों प्रकारके पाचक-रस, जैसे मुंहकी लार, पेटमें जठरास्रव, पित्त, पेंक्रियेटिक रस और आंतोंमें उत्पन्न होनेवाला रस, मुंहसे गुदा तक पहुचने वाले मार्गमें भोज्य पदार्थोंके पचानेमें बड़ा काम करते हैं। मांडयुक्त पदार्थोंको लार या सलीवा पचाता है। माड पचकर चीनीका रूप धारण करता है और आगे बढनेपर आंतोंमें पेंक्रियेटिक और आंतरस अपना अपना काम करते हैं। इन सब रसोंके सम्मिश्रणसे पेटमें पहुंचा हुआ सारा भोजन दूधकी तरह श्वेतवर्णमय और पतली सूरतमें बदल जाता है, जिसे चाइल कहते हैं। यह चाइल असरसवाही नाडियां हजम करती हैं और फिर यही रस रक्त बन जाता है। हृदयके दक्षिणी भागमें अशुद्ध रक्त जमा होता है। यह शुद्ध होनेके लिए फेफड़ोंमें जाता है, तत. शुद्ध होकर यह रक्त हृदयके वाम भागमें आता है और वहांसे पप होकर विशाल आओर्टी नामक धमनीमें जाता है, जहां से उसका समस्त शरीरमें प्रसार होता है। अत्यन्त सूक्ष्म नाडियोंमें पहुंचकर रक्त वर्णहीन रसकी तरह पसीजा करता है और शरीरके रग, रेशों और कोषाणुओंका सिंचन और पुष्टीकरण करता है। पुनः सारे शरीरमें घूमकर अशुद्ध हुआ रक्त स्नायुओंद्वारा हृदयके दक्षिण भागमें जाकर जमा होता है।

पचनेसे बचा हुआ भोजन, जिसे हम भोजनका अवशेष कहते हैं, अन्तमें छः फीट लम्बी बडी आंतमें मलके रूपमें जमा होता है और जब यह आंत मलसे भर जाती है, तब दिशा त्यागकी भावना मेरुदण्डसे गुदाको पहुंचती है, जिससे मनुष्य दिशा त्याग करता है और इस प्रकार गुदाद्वारा अन्त्रस्थित मल बाहर निकल जाता है।

गुर्दे, जो कमरमें दोनों ओर बने हैं, रक्तमें से बराबर पेशाब खींचा करते हैं और यूरेटर्स नामक दो मूत्र वाहिनी नाडियोंद्वारा मूत्रको मूत्राशयमें पहुंचाते हैं। यही मूत्र पेशाब लगनेपर बाहर निकल जाता है।

स्नायुमण्डल बृहत् मस्तिष्क या लघु मस्तिष्क मेरुदण्डस्थित स्नायु और पिंगल स्नायुमण्डलका बना है। देखने, सुनने, स्वाद लेने, सूंघने और बोलने आदिकी क्रियाके केन्द्र मस्तिष्कमें हैं, तभी बिच्छुके काटते ही दर्दकी भावना बृहत् स्नायु तक पहुंचती है तो मस्तिष्क स्वतः ही प्रभावित हो जाता है। अत: पीडाका समाचार और उसका प्रभाव पिंगल स्नायुमण्डल द्वारा सारे शरीरके आन्तरिक अंगों, उदर, प्लीहा, हृदय और तिल्ली आदिमें पहुंच जाता है।

वीर्यकी उत्पत्ति भी बतानी आवश्यकीय है। अण्डकोषमें जो दो गोलियां होती है, उन्हें अंगरेजीमें सीक्रेटरी ग्लेन्ड्स कहते हैं, जो अपने कोषाणुओंसे वीर्यसंचय किया करते हैं। वह वीर्य दो नाडियों द्वारा खींच लिया जाता है और वीर्याशयकी दो थैलियोंमें जमा होता है। कामोत्तेजनाके समय यही वीर्य वीर्याशयमेंसे छोटी-छोटी नाडियोंद्वारा मूत्रकी नलिकामें आ जाता है और प्रोस्टेट ग्रन्थिके रसमें मिलकर बाहर निकल आता है। वीर्यके पतनसे निश्चयतः हमारे समस्त शरीरपर इसकी प्रतिक्रिया होती है और अधिकतर रोगोंका श्रीगणेश वीर्यके अस्वाभाविक पतनसे ही होता है। और स्मृति तथा बुद्धि पर इसका कम प्रभाव नहीं पडता, आजतक शरीरविषयक जानकारीने हमको यही रहस्य बताया है कि मनुष्यकी शक्ति और सन्तानदायिका शक्ति उसके वीर्यमें ही केन्द्रित रहा करती है और उसका अधिक पतन मनुष्य की ग्रन्थियोंको निर्बल बना देता है। परन्तु कौनसे ऐसे उपाय हैं जिनसे इनका परिहार हो, हम सामान्यतः आपको यही बतलाने जा रहे हैं।

हमारा आहार–जिस पर हम जीते हैं।

इसको दूसरे शब्दोंमें योगीका भोजन भी कहा गया है।

वह भोजन, जो मनुष्यमें आध्यात्मिक-जागरण लानेमें सहायक हो, और जो उसके आरोग्यको सदा उन्नत रखे... हमारा आहार कहे जाने योग्य है। भोजनका सम्बन्ध मनुष्यके जीवनसे इतना गहरा है कि हमारे जीवनके आनन्द अधिकतर उसीपर अवलम्बित रहते आये हैं। छान्दोग्यमें जैसे उद्दालकने अपने पुत्र श्वेतकेतुसे भी कहा है कि पचनेके बाद भोजनके तीन रूप हो जाते हैं। मोटे भागको मल कहते हैं। मध्यम भागसे मांसादि तथा सूक्ष्म भागसे मनुष्यके मनका निर्माण होता है। इसी प्रकार यही उपनिषद् आगे चलकर यह बतलाता है कि आहारके शुद्ध होनेपर मनुष्यकी प्रकृति भी शुद्ध हो जाती है और निश्चयतः जब उसकी प्रकृतिका संस्करण हो गया तो उसकी मनुष्यताके अनेकानेक गुण जागृत होते हैं, और वही मेधावान् और प्रज्ञावान् होता है।

इसी भोजनको साधारण रीतिसे तीन भागोंमें विभक्त किया जाता है, सात्विक, राजसिक और तामसिक। इसके तीन भेद होते हैं। उदाहरणके लिए दूध, फल, अन्न, नवनीत, पनीर, टिमाटर, पालकको सात्विक-भोज्य पदार्थ कहा जा सकता है। इनके सेवन करनेसे मन शुद्ध होता है। मछली, अंडे, मांस, मसालोंसे बनी तरकारियां राजसिक भोजन कहे जाते हैं। इनके सेवनसे मनुष्यकी कामोत्तेजना बलवती होती है। गोमांस, प्याज, लहसुन, बासी भोजन को तामसिक पदार्थकी संज्ञा दी गई है, क्योंकि इनके सेवन करनेसे मनुष्यके स्वभावमें जड़ता आ जाती है। वह काम और क्रोधादिकी सीमाका अतिक्रमण कर घृणा, द्वेषादिका भण्डार बन जाता है। अतः उसके शरीरमें कई रोग घर कर लेते हैं, जिनको वह लगभग अपने जीवनकी यातनामें परिवर्तित करता रहता है। जिन लोगोंने गीताका अध्ययन किया है, वे अच्छी तरह जान सकते हैं कि भगवान्ने किस प्रकार सात्विक, राजसिक और तामसिक भोज्यपदार्थपर अवलम्बित हुए मनुष्यके मन तथा उसके जीवनका विवेचन किया है।

अतः हम देखते हैं कि हमारे सामने नित्य दिखाई देनेवाली वस्तुओंमें तीन प्रकारके भोज्यपदार्थ ही सर्वव्याप्त हैं, जो निज-निजगुणानुसार मनुष्यको प्रभावित करते रहते तथा उसके जीवनको तत्तद्प्रभावानुसार रचते रहते हैं। इसलिए यह कहनेकी आवश्यकता नहीं होगी कि हमारा आहार सदा सात्विक होना चाहिए, जिसमें पोषकतत्वोंका प्राचुर्य हो, जीवननिर्माणकगुणोंका समावेश हो और साथ-साथ जो हमारे नित्यके जीवनमें अपेक्षाकृत सुगमतासे प्राप्त हो सकें, अर्थात् जिनकी संप्राप्ति हमको प्रकृतिकी गोदसे स्वतः ही होती रहे।

राजसिक भोजनसे मनुष्यकी वृत्तिमें उत्तेजना आती है, उँबार आता है या यों कहिए कि दूधकी तरह उफान आता है, जिसकी प्रतिक्रिया प्रकृतिके विधानानुकूल होती रहती है— कालान्तरमें जिस प्रतिक्रियाका कारण मनुष्यको कई ऐसे गुणोंका दास बना देता है कि विकाश और जागरणके स्थानमें वह निर्बाधगतिसे अपने स्वरको खोता जाता है और निश्चयतः अपने मनुष्यत्वको भी भूल जाता है। मनुष्यत्वका विस्मरण ही तो मनुष्यका महान् अपराध है।

तामसिक भोजन मनुष्यमें आलस्य और जड़ता लाता है और तामसिक-प्रकृतिवाला मनुष्य बुद्धिहीन हो जाता है। सड़ा हुआ भोजन, अशुद्ध भोजन तथा बासी भोजन खानेसे केवल मात्र हमारी प्रकृतिपर ही बुरा प्रभाव नहीं पड़ता, किन्तु हमारा शरीर और उसके सारे अवयव गलित होने लगते हैं, तत्फलतः कई रोग हमारे शरीरमें घर कर लेते हैं और हमारा जीवन निश्चयतः दुःखमय प्रतीत होने लगता है।

तब हमारा भोजन कैसा होना चाहिए? हमारा भोजन 'ऐसा होना चाहिए जिससे हमारा शरीर स्वस्थ रहे और शरीरके समस्त अवयव एक दूसरेसे सहानुभूतिक व्यवहार करें तथा हमारा मन और हमारी बुद्धि सत्वमयी हो। यह तो निश्चित है कि मनुष्यका कल्याण अन्य बातोंकी अपेक्षा उसके पुष्टिकर जीवनानुपालनपर निर्भर है। आंतोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक रोग, संक्रामक रोगोंका आविर्भाव, निर्वीर्य हो जानेसे शरीर रचनामें विकल्प अस्थिमण्डलका गलित होने जाना, ताजा भोजन नहीं खानेसे कई रोगोंका आक्रमण, शरीरपोषक-रक्तकी कमी तथा अन्यान्य सभी रोग केवलमात्र हमारी शारीरिक चर्याके विकल्पके कारण ही उत्पन्न हो जाते हैं। यह भी ठीक है कि जलवायुका भी शरीरपर प्रभाव पड़ता है, परन्तु यह कभी नहीं भूलना कि जलवायुकी अपेक्षा सात्विक और

पौष्टिक भोजन मनुष्यको स्वस्थ और बलवान् और नीरोग बनाता है और बुरा भोजन किसी भी उच्चकोटिकी जलवायु-वाले प्रदेशमें भी आपको अनेकानेक रोगोंसे आक्रान्त कर सकता है। जो अपनेको आरोग्यसे संचलित रखना चाहे, उसे चाहिए कि वह भोजनसे होनेवाले शरीरपर प्रभावके विज्ञानका अच्छा ज्ञान प्राप्त कर ले। और यदि उसे इसका समुचित ज्ञान हुआ तो यह निश्चय है कि वह अभोज्य और भोज्यका निर्णय अवश्य करेगा ही। ऐसे पुष्ट कले" वरके व्यक्तिके परिवारमें सभी लोग स्वस्थ और नीरोग होंगे। अतः आवश्यकता है समगुणी भोजनकी... न कि बहुत खर्चीले भोजनकी। स्मरण रखो कि मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणसे अधिक खर्चीला भोजन मनुष्यको लाभके बदले हानि ही पहुचाता है और साथ-साथ मसालेदार भोजन प्लीहा, गुर्दे और उदरस्थ रोगको उत्पन्न करता है। जिस भोजनमें सभी गुणोंका संतुलन है, वह भोजन मनुष्यके शरीरके अवयवोंको पुष्ट करता और उसमें मानसिक शक्तिका विकास करता है, उसमें स्फूर्ति और शक्तिका प्राचुर्य रहता है। यह सिद्धान्त अक्षरशः सत्य है कि मनुष्यका निर्माण भोजनपर ही अवलम्बित है।

यह जानना आवश्यकीय है कि भोजन दो कार्योंके लिए किया जाता है। (१) शरीरका तापमान ठीक रखनेके लिए, और (२) शरीरमें निरन्तर होती रहनेवाली कमियोंको पूरा करनेके लिए और नए रग, रेशे बनानेके लिए। भोज्य पदार्थोंमें अन्नसार, श्वेतीरमय तत्व, हाइड्रो-कार्बन्स, दाहक क्षार, अन्य प्रकारके क्षार, जलज और पौष्टिक पदार्थ होते हैं। दाल और दूधमें वह पदार्थ प्रचुर परिमाणमें होते हैं, जो नये रग और रेशोंके पुनर्निर्माणमें बडी सहायता देते हैं। अन्नसार भोज्यपदार्थमें शारीरिक सम्मिश्रणके योग्य तत्व होते हैं। इनमें कार्बन, हाइड्रोजन, औषजन, नत्रजन, कभी कभी गन्धक, दाहक पदार्थ और लोह-खनिज भी होता है। माडयुक्त पदार्थ कार्बोहाइड्रेट्स होते हैं। चावलमें इसका प्राचुर्य होता है। यह पदार्थ शक्तिवर्धक तथा अग्निवर्द्धक होते है। कार्बोहाइड्रेट्स तत्व माड, चीनी और गोंदमें होता है, जिनमें कार्बन-हाइड्रोजन और औषजन होते हैं। हाइड्रोकार्बन घी और वानस्पत्य-तैलादिमें रहता है। ग्लीसरीनमें चिकने तैजाबोंके सम्मिश्रणसे चर्बीयुक्त पदार्थ बनता है। चूंकि यह आवश्यक रहता है कि इस शरीरमें तेल देकर इसे चिकना रखा जाय, अतः मक्खन, मलाई, पनीर, मूगफलीका तेल, सरसोंका तेल, जतूनका तेल शरीरमें चिकनाहट पहुंचानेके साधन हैं।

पूर्ण भोजनकी व्याख्या ऐसी होनी चाहिए। पूर्ण भोजन वही है, जिसमें खाद्यविज्ञानके अनुसार पुष्टिकारक पदार्थ उचित तथा सममात्रामें हों, और जिनके सेवन करनेसे शरीर और मन हलका और स्वस्थ और तेजोमय रहे। दूध पूर्ण भोज्य पदार्थ है, क्योंकि इसमें सभी आवश्यक पुष्टकारक पदार्थ उचित मात्रामें रहते हैं। अन्नसार, चिकनाहट और कार्बोहाइड्रेट्स उचित मात्रामें होने चाहिए। जिस भोजनमें तत्कथित तत्वोंका असाम्य रहता है, उसे विषम भोजन कहा जाता है। विषय भोजन करनेसे शरीर उचितरीत्या पुष्ट नहीं होगा, शरीरका विकाश भी विषम ही होगा, तथा शरीरमें तरह-तरहकी कमजोरियां दिखलाई देंगी। केवल यही नहीं, भांति-भांतिकी बीमारियां जड पकडती जायेंगी और शरीर तथा मन निरन्तर क्षीण होता जायगा। यदि भोजन उचित, नियत, संतुलित, सामयिक, अनुकूल और सात्विक हुआ तो केवल मात्र आपकी दैहिक पुष्टि ही नहीं होगी, किन्तु आपके मनपर भी उसका प्रभाव पडे बिना नहीं रहेगा। और जहांतक आजतक अनुभवी-लोगोंने निश्चय कर पाया, वह यही था कि भोजनका प्रभाव प्रथमतः मनपर ही पडता है और उसकी ही प्रतिक्रिया शरीरपर होती है।

जो हो, मैं उन लोगोंसे यह अवश्य कहूंगा, जो मांस और अण्डोंको आरोग्यके लिए हितकर समझे बैठे हैं, कि यह उनका भ्रम ही है! इस बातको लेकर आजके नेताओंने भी सन्तोषजनक खोज की है और वे इसी निष्कर्षपर आये कि आरोग्य और दीर्घजीवनकी दृष्टिसे मांसाहार मनुष्यके लिए महा हानिकारक है। तत्फलतः आप आज पश्चिममें इस विचारके लोगोंकी संख्याको विकाशकी ओर आती हुई पायेंगे, जिनका मत है कि मांसाहार शरीरके लिए हानिकारक है और दूधमें मनुष्यजीवनको धारण करनेके गुण पर्याप्त मात्रामें होते हैं। अतः पश्चिममें गोपालनके लिए विचारोंकी क्रान्ति ही चल पडी है। जितनी भी हरी तरकारियां हैं और जितने भी दूधसे सम्बन्धित खाद्य

हैं — मनुष्य जीवनको धारण करनेकी अमित शक्ति रखते हैं। इसीलिए हमारे शास्त्रोंमें गोपालनको ईश्वर--पूजनका महत्व दिया गया था और जिसकी अवहेलना हम आज कर रहे हैं। यही अवहेलना आज हमारी प्रक्षीण आयुके लिए उत्तरदायी है, अन्यथा दुग्धाहारी हमारे पूर्वज शतशरदजीवनको आनन्दसे देखते थे, जहां आज हम शतशरदजीवी जीवनके प्रथम प्रहरमें अपने जीवनसूर्यको अस्त हुआ देखते हैं। इसका कारण क्या है, विचारक स्वतः समझ सकते हैं।

जो लोग सादा और मामूली परन्तु ताजा भोजन करते हैं, वे अत्यन्त सुन्दर कलेवरको धारण करनेकी क्षमताको प्राप्त किए हैं तथा उनकी बुद्धि भी अत्यन्त प्रखर हो जाती है। उनका व्यक्तिगत नैतिक-चरित्र भी आदर्श ही रहता है। मामूली और सादे भोजनसे किसी भी भोजनसे मतलब नहीं। यह नहीं कि आप सस्ती पकौडियां खानेको सादा भोजन कहने लगें। सादे भोजनका अर्थ है, मसालों और अत्यन्त अधिक चिकनाहटसे रहित भोजन, जिसमें राजसिक पदार्थोंका सर्वथा लोप हो।

हमारा आहार ऐसा होना चाहिए, जो न केवल हमारे उदरकी तृप्ति करे, न केवल हमारे स्वादकी पूर्ति करे और न केवल हमारे पेटको ठसाठस भर दे, अपितु हमारे आहारका रूप ऐसा होना चाहिए, जो सर्वसुलभ हो, सर्वश्रेष्ठ हो, सर्वगुणसम्पन्न हो तथा किसी भी अवस्थामें हमारी शारीरिक और मानसिक प्रकृतिमें विषमता न लाने पावे, जिसके सेवन करनेसे हम शरीरके भारीपनका अनुभव न करें, दीर्घ श्वास लेनेकी आवश्यकता न समझें। हमारा आहार मिताहार हो, अर्थात् न तो अत्यन्त अधिक हो, और न अत्यन्त कम ही हो। न तो हमारे शरीरकी आवश्यकताके लिए पोषकतत्वोंकी कमी ही हो और न इतनी अधिकता हो कि हमारे आन्तरिक अवयव उनके दबावको सहन ही न कर पायें। अतः यदि आप चाहते हैं कि आप नीरोग रहें और अपनी सन्तानोंको भी रोगमुक्त बनायें, यदि आप अपनी कमाई हुई सम्पत्ति दवाखानोंमें होम नहीं करना चाहते, यदि आप अपने जीवनके रहन-सहन, खान-पानके स्तरको ऊंचा उठाना चाहते हैं, यदि आप यह चाहते हैं कि आप और आपके परिवारवाले बलिष्ठ और बुद्धिमान् हों — निश्चयतः यदि आप अपने और अपने सम्बन्धियोंके जीवनकी यात्राको निष्कंटक बनाना चाहते हों तो— आपको अपने आहारको प्रयोगों-पर-प्रयोग कर संतुलित करना होगा, ताकि वह न तो अस्वाभाविक हो और न चिडियाके भोज्य-परिमाणमें हो, न तो आवश्यकतासे कम हो और न अधिक हो। फल सस्ते होते हैं, फल खानेकी आदत डालो। यह न कहो कि फल लेनेकी शक्ति कहां? अपना मात्राधिक खर्च कम कर दीजिये। मादक-पदार्थोंका सेवन त्याग दीजिए। चाट खाना भी छोड दीजिए। तब देखिए कि किस प्रकार आप आर्थिक दृष्ट्या फल और दूध पीनेके योग्य नहीं होते?

आहारके विषम होनेका परिणाम हम भोग ही तो रहे हैं, अधिक विवरणकी आवश्यकता नहीं— अतः आज हम लोगोंका कर्तव्य हो जाता है कि हम यथाशीघ्र अपने जीवनका नियमित, सैद्धान्तिक बनावें, जिससे हम अपने मनुष्य जीवनके कर्तव्योंकी पूर्ति कर सकें और अपने अपने कर्मोंको अत्यन्त कुशलतासे करनेकी क्षमता प्राप्त करें तथा अपने कर्मोंमें रत रहते हुए, जीवनमें ही सिद्धिको प्राप्त करें— इसलिए कि धर्म अर्थ, काम, मोक्ष— जीवनके इन चार विभागोंकी कुंजी आरोग्य ही है, तथा यह भी कि यह सिद्धि बलहीनके द्वारा प्राप्त नहीं हो सकती— जीवन-शक्तिको प्राप्त किया हुआ वीर ही कर्मक्षेत्रकी बाधाओंका निराकरण करता हुआ, आश्चर्यमय-सिद्धिका वरदान प्राप्त करता है और प्राप्त करता है धर्मके अभ्युदयकी क्षमता।

स्वर्गीय आचार्य श्री चन्द्रकान्तजी



वेद वाचस्पति आचार्य श्री चन्द्रकान्तजीकी मृत्यु आर्य जगतके लिये अनभ्र वज्रपात सिद्ध हुई है। किसे मालूम था कि मईको यह आपत्ति अचानक हमपर आ-गिरेगी। जिसके जीवनका प्रत्येक क्षण आर्य संस्कृतिकी सेवामें समर्पित हुआ, जिसने अपना समस्त जीवन एक आदर्श कर्मवीरकी भांति बिताया और जिसके जीवनमें भवि-ष्यके लिये अनेक महान् योजनायें थीं' उसका इस प्रकारसे असमय अवसान हुआ देखकर किस संस्कृत-प्रेमीको खेद न होगा!

यों तो उनका जीवन अमर है और जबतक गुरुकुल सूपाका शिक्षण केन्द्र प्रचलित है तबतक उनका स्मारक भविष्यकी अनेक पीढियोंको उनकी उज्वल स्मृति कराता रहेगा। एक बहुत बडे विद्वान्के रूपमें गुजरातकी जनता उनके व्याख्यानोंको सदैव स्मरण करती रहेगी। गुरुकुलके शतशत शिष्य वृन्द अपने प्रिय आचार्यकी ममताको कभी भी भूल न सकेंगे। किन्तु क्या किसी भी रूपमें इस स्थानकी पूर्ति वे अपने जीवनमें कर पायेंगे?

एक उद्भट विद्वान्के रूपमें, एक सफल वक्ताके रूपमें, प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं ओजस्वी पुरुषके रूपमें, महान् कर्मवीर एवं दृढसकल्प नेताके रूपमें आर्यजगत् ही नहीं, भारतके सभी सांस्कृतिक व्यक्तित्व आचार्य श्री चन्द्रकान्तजी-को कैसे भुला सकते हैं? यह सूक्ति सत्य है 'कीर्तिर्यस्य स जीवति' और इसीलिये आचार्य श्री चन्द्रकान्तजी अमर हैं।

ब्रह्मपारायण यज्ञकी शास्त्रीयता

(ले- पं. श्री दा. सातवळेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, जि. सूरत)

आजकल आर्यसमाज के पण्डित बहुतसे स्थानोंपर ' ब्रह्म-पारायण-यज्ञ ' करते तथा करवाते हैं। इस तरह का यज्ञ करने के लिये किसी ऋषिप्रणीत ग्रंथमें प्रमाण नहीं मिलता है । यदि किसी के पास प्रमाण हो तो वह उसको प्रकाशित करें। पं. धर्मदेवजी मंत्री श्री. सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली ने इस विषयके प्रमाण एकत्रित किये हैं ऐसा मैंने सुना है। उनको देखने पर मैं अपनी सम्मति उनपर प्रकाशित करूंगा।

कुष्ठरोग निवारण

शातातपस्मृति में चारों वेदोंके मंत्र पढकर यज्ञ करनेका उल्लेख है, पर वह ' कुष्ठरोग निवारण ' के लिये वहां कहा है। शातातपस्मृति कितनी माननीय है, यह भी एक महत्त्वका प्रश्न है। पर यहां जो उल्लेख है वह ' कुष्ठरोगी अपने कुष्ठरोग का पाप धोनेके लिये ऐसा करे ' इतना ही इसका तात्पर्य है। सब लोग-जो कुष्ठरोगसे पीडित नहीं हैं, वे भी संपूर्ण चारों वेदोंके मंत्र पढकर हवन करें, ऐसा तो इसका अर्थ नहीं है।

मन्त्रपाठकी शक्ति

वेदके मंत्रोंके पाठमें पुण्य है, वेद पठनसे वह पुण्य प्राप्त होगा। इसमें हानिकी संभावना नहीं है। ऐसा भी कई मानते हैं। यदि इनका मत स्वीकार किया जाय, तो वेद-मंत्रों के पाठमें कुछ न कुछ अद्भुत शक्ति है और वह शक्ति वेद पाठ करने करवाने वालेको प्राप्त हो सकती है ऐसा मानना पडेगा। इस मतका स्वीकार करनेपर वेदपाठ करने वालेके ऊपर बडी भारी जिम्मेवारी आती है। और इसी लिये योग्य समयमें, योग्य रीतिसे, योग्य विद्वान् के द्वारा अथवा स्वयं योग्य बनकर मंत्रका पाठ योग्य कार्य के लिये करना चाहिये, ऐसा मानना पडेगा। मंत्रपाठमें शक्ति है तो उस शक्तिका उपयोग सावधानीके साथ करना चाहिये इसमें संदेह नहीं है। पत्थर हरकोई उठाकर फेंक सकता है, पर ' एटम बम्ब ' हरकोई असावधानी से फेंकेगा तो उसका परिणाम ठीक नहीं होगा। इसी तरह यदि वेद मंत्रमें कुछ शक्ति है तो उसका उपयोग योग्य रीतिसे ही करना चाहिये।

ब्रह्मपारायण यज्ञ

अब ' ब्रह्म-पारायण-यज्ञ ' के विषयमें देखिये। यज्ञका विचार करनेवाले ग्रंथ (१) सब ब्राह्मण ग्रंथ, (२) पूर्व मीमांसा तथा (३) श्रौत सूत्र ये हैं। ब्राह्मण आठदस हैं, श्रौतसूत्र बारह या अधिक हैं, पूर्व मीमांसा एक है, पर उसपर टीका टिप्पणियाँ अनेक हैं। इनमें ' ब्रह्म-पारायण-यज्ञ ' इस नामका एक भी यज्ञ नहीं है। ' ब्रह्म-यज्ञ ' है और उसमें ' वेदमंत्रोंका पारायण ' ही होता है, पर वह केवल पारायण मात्र ही है, उसके साथ हवन नहीं है। ब्रह्म यज्ञमें केवल मंत्रका पाठही विहित है। पर आर्यसमाजी जो ' ब्रह्म-पारायण-यज्ञ ' करते हैं, उसमें मंत्रके पाठके साथ उस मंत्रकी देवता के लिये घृत की तथा हवन सामग्री की आहुति दी जाती है। कई जगह हमने देखा है कि मंत्र बोलकर केवल ' स्वाहा ' बोलकर घृतकी तथा हवन सामग्रीकी आहुति ही केवल देते हैं। आर्य समाज के पंडित प्रायः केवल मंत्र बोलकर ' स्वाहा ' करके ही आहुति देते हैं। देवता का उल्लेख करके आहुति देने में अधिक सावधानी रखनी पडती है, संभवतः इसलिये देवतानामोंका उच्चारण नहीं करते।

(१) सूक्तकी एक देवता होती है, और

(२) कई मंत्रों में उस मुख्य सूक्त-देवता के अतिरिक्त कई अन्य देवताएं भी होती हैं तथा

(३) विश्वेदेव विषयक मंत्रमें अनेक विभिन्न देवताओंका उल्लेख रहता है।

इस कारण सूक्त-देवता और मंत्रोक्त देवताका विचार

करके उन देवताओंके नामोंका उच्चारण करके उन देवताओं-के उद्देश्यसे हवि देकर ' स्वाहाकार ' करना यह बडा ही कठिन कार्य है । यजुर्वेद मंत्रोंमें तो यह विशेषही कठिन कार्य है ।

प्रायः जहां आर्यसमाज के पंडितों द्वारा ऐसे ब्रह्मपारायण हुए और हमने देखे, वहां किसी भी स्थान पर सूक्त देवता-का भी उल्लेख हुआ है ऐसा हमने देखा नहीं । मन्त्रमें उक्त देवताओंका निर्देश करना तो बडी कठिन बात है । प्रायः हमने जहां देखा, वहां मंत्रपाठ करके ' स्वाहा ' का उच्चारण करते और घृतकी और हवनसामग्री की आहुती देते देखा है ।

सूक्तकी देवता का तथा मंत्रोक्त देवता का उच्चारण करके उस देवताके अथवा उन देवताओं के उद्देश्यसे यह आहुति देता हूं, ऐसा कहना योग्य है, पर वैसा किसी स्थानपर होता नहीं है । यह योग्य होता है वा नहीं, इसका विचार विद्वान पंडित करें ।

केवल मंत्रोच्चारण पूर्वक देवता निर्देश न करते हुए दी हुई आहुति क्या करेगी और यथोचित मंत्रोच्चारण के साथ सूक्तोक्त तथा मंत्रोक्त देवता का निर्देश करके दी हुई आहुति क्या परिणाम करेगी इसका मनन विद्वान पण्डित करें । मैं इस विषयमें इस समय अधिक गहरा जाना नहीं चाहता । यहां प्रश्न इतनाही है कि-

विचार करने योग्य प्रश्न

१ प्रश्न – विना देवताके उद्देश्यका निर्देश किये केवल मंत्र बोलकर ' स्वाहा ' करनेसे इष्ट कामना सिद्ध हो सकती है, इस विषयमें प्रमाण कौनसा है ?

२ प्रश्न – अन्त्येष्टीके मंत्रोंका उच्चारणपूर्वक हवन मंगल कामना में साधक है वा बाधक ? मृतक संस्कारके लिये ही प्रकट हुए मंत्र अन्त्यसंस्कार, अन्य मंगल प्रसंगों में बोलना और उनके साथ स्वाहाकार करना योग्य है वा नहीं ?

सार्वदेशिक आर्य प्र० सभा अपने पण्डितों को शीघ्र बुलाकर इन प्रश्नोंके विषयमें अपना निर्णय अतिशीघ्र प्रकट करे । यह विषय योंही टालनेके योग्य नहीं है । यदि वेद मंत्रों में शक्ति है तब तो अन्त्येष्टीके मंत्र मृतकसंस्कार के समय ही बोले जाने चाहिये । वे मंत्र विवाहसंस्कारमें अथवा जागतिक शान्ति के लिये किये जानेवाले यज्ञमें बोलने योग्य नहीं हैं । इसके कुछ उदाहरण नीचे देता हूं ।

यजुर्वेदीय अंत्येष्टी अध्याय

यजुर्वेद (वा० सं०) का ३९ वां अध्याय अन्त्येष्टि कर्म में विनियुक्त हुआ है । श्री महर्षि स्वामीजी महाराजने इस अध्यायके भाष्यके प्रारंभमें ही कहा है कि " अथ अन्त्येष्टिकर्मविषयमाह " अब इस उनतालीसवें अध्या-यका आरंभ है। उसके प्रथम मंत्रसे अन्त्येष्टि कर्मका विषय कहते हैं । इस अध्यायमें अन्त्येष्टिकर्म ..और दाहकर्म कहते हैं । ... इस अध्यायके इस स्वाहान्तमन्त्रों से...घीका होम कर मुर्देको सम्यक् जलावे । (मं० १) पूर्वोक्त विधिसे शरीर जलाकर सब दिशाओं में शरीरके अवयवोंको अग्नि-द्वारा पहुचावें । (मं.२) जीव शरीर छोडनेपर १२ दिनोंमें सूर्य अग्नि वायु आदिको प्राप्त होता है । (मं. ६) जो धर्मात्मा हैं वे शान्तिको और पापी कठोर अवस्थाको प्राप्त करते हैं । (मं. ७) जब तक लोमसे वीर्यपर्यंत उस मृत शरीरका भस्म न हो जाय तब तक घी और इन्धन डाला करो । (१०)

यह श्री स्वामीभाष्य है । अन्य भाष्यभी यही कहते हैं । इससे स्पष्ट है कि यह अध्याय मृत शरीरके दाहकर्मका ही वर्णन कर रहा है । जो लोग विश्वशान्ति, अपनी पुष्टि, तथा समाज कल्याणके लिये यज्ञ करते हैं, उस यज्ञमें इस अध्याय के मंत्र बोलकर स्वाहा कहकर हवन करना उचित है या नहीं यह प्रश्न यहां है। जो पण्डित इसका विचार कर सकते हैं वे विचारपूर्वक और युक्तिप्रमाणपूर्वक इसका उत्तर दें ।

केवल प्रेतदाह करनेके लिये ही जो मंत्र हैं वे मंगल गृह्य यज्ञमें बोलना योग्य है वा नहीं यह प्रश्न यहां है। अब अथर्ववेदका अन्त्येष्टि सूक्त देखिये-

अथर्ववेदीय अन्त्येष्टी सूक्त

अथर्ववेद के अठारहवें काण्ड में मृतक संस्कार, पितृयज्ञ आदि विषय हैं । इस अध्याय के कुछ मंत्र देखिये —

इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम् । अथर्व. १८।३।१

' हे मृत पुरुष ! यह स्त्री पतिलोक को प्राप्त करने की इच्छासे तेरे पास लेटी है । ' कौशीतकी सूत्रमें इस मंत्रको बोलकर मृतपतिके साथ चितापर उसकी स्त्री सो जावे, ऐसा कहा है ।

' उदीर्ष्व नार्यभिजीवलोकं०' (मं० २) इस मंत्रको बोलकर स्त्री चितापरसे अपने मृत पतिके शरीर को छोड कर उठे, ऐसा कौ० सू० में लिखा है ।

अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यः तं निर्वहत परिग्रामादितः । मृत्युर्यमस्यासीद्‌दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयांचकार ॥ अ. १८।२।२७

' जीवित मनुष्योंने इस मृत शरीरको जीवितोंके घरों से अलग कर दिया है । मृत देहको ग्रामसे दूर ले जाओ । मृत्यु नामक यमके दूतने इसके प्राणोंको पितरोंके स्थानमें भेज दिया है । '

कौ० सूत्र के अनुसार प्रेत जलाने में इस मंत्रका विनियोग है।

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः ।
सर्वांस्तानग्न आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥
अ. १८।२।३४

' जो मुर्दे गाडे गये हैं, जो मुर्दे दूर फेंके हैं, जो मुर्दे जलाये हैं और जो (पक्षियोंको खानेके लिये) ऊपर रखे हैं । हे अग्ने ! इन सबको हवि के भक्षण करनेके लिये यहां ले आ । '

इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे ।
ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चावगच्छतात् ॥५६॥

' ये दो बैल मैं इस गाडीको जोतता हूं, मृतशरीर को (स्मशान तक) ले जानेके लिये (यह गाडी है ।) इस गाडीसे तू (हे मृतपुरुष !) यम के घर जा । (इस मृत की गाडीके साथ जाति बांधवोंकी) मंडली (स्मशान तक) जावे । ' कौ० सू० के अनुसार मृत शरीर की अर्थी ले जानेके समय यह मंत्र पढा जाता है । दो बैलों या दो घोडोंकी गाडीमें प्रेत रखा जाय और वह स्मशानमें ले जाया जाय यह भाव यहां है ।

यह सम्पूर्ण अठारहवाँ काण्ड सबका सब इसी अंत्येष्टी, मृतकदाह, तथा पितृयज्ञका वर्णन करने वाला है । क्या ये मंत्र विश्वशान्ति या गृहशान्ति के लिये किये जानेवाले शान्ति के पौष्टिक यज्ञ कर्मके समय बोले जाने योग्य हैं ?

इनमेंसे कई मंत्र ऋग्वेदमें भी हैं । पर थोडे हैं । अथर्ववेदमें ये मंत्र करीब ३०० हैं

एक अज्ञानजन्य भ्रम

वेद पर श्रद्धा रखनेवालोंमें एक अज्ञानसे उत्पन्न हुआ भ्रम है । वह यह है कि कुछ भी वेदके मंत्र बोले जांय, घीकी और हवन सामग्री की आहुतियाँ दी जांय, तो यज्ञ होता है और ऐसे यज्ञसे सबका कल्याण होता है । अविधिपूर्वक इस तरह हवन करनेसे किसीका कल्याण होगा ऐसा कोई मानता हो तो वैसा वह माने । उसके सुखमें बाधा डालनेकी हमें इच्छा नहीं है ।

हम समझते हैं कि कोई भी यज्ञ एक पवित्रविधि है । यथाविधि करनेसे ही वह लाभदायक हो सकती है । अविधिसे किया आडंबर हानि करनेवाला होगा इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं है ।

यजुर्वेदमें यज्ञोंके प्रकरण बने बनाये विद्यमान हैं । शतपथ आदि ब्राह्मणोंमें यज्ञोंका विस्तार पूर्वक वर्णन है । हमने अपने पचास वर्षोंके अध्ययनमें आज कल चलाये ब्रह्मपारायण यज्ञ का प्राचीन ग्रंथोंमें दर्शन नहीं किया । इस समय आर्यसमाजी पंडित ऐसे हवन करवाते हैं और वे उसका यज्ञ कहते हैं । यह जो हो रहा है वह ठीक है वा नहीं इसको पण्डितों को विचार करना चाहिये । यह यज्ञका उपहास है, ऐसा हमें प्रतीत हो रहा है ।

एक सूचना

इस विषयमें हमारी सूचना यह है कि श्रीमती सार्वदेशिक आ० प्र. सभा इसका विचार करे, अपने पण्डितोंको बुलावे । एक स्थानपर कुछ दिन तक उन पंडितोंको बिठला कर...

ऋग्वेद के	११००० मंत्र
यजुर्वेद के	१८०० ,,
सामवेद के	१८०० ,,
अथर्ववेद के	६००० ,,
	२०६०० मंत्र हैं ।

इनमें से पुनरुक्त मंत्र पृथक् किये जांय तो १६००० मंत्र रहेंगे । इन मंत्रोंको विषयवार छांटा जाय । धनप्राप्ति, गृह

सौख्य, पुत्रलाभ, राज्यलाभ, वैभवसंवर्धन, यशःप्राप्ति, वर्चःसाधन, राज्यवर्धन, विश्वशांति, समाजशान्ति, दुष्टोंके उपद्रवका शमन, स्त्री सौख्य, व्यापार संवर्धन, राष्ट्रवैभववृद्धि आदि अनेक विषयोंके शीर्षकोंके नीचे ये मंत्र अर्थानुसार रखे जांय। इस तरह विषयवार वर्गीकृत मंत्रोंकी पुस्तक शीघ्र प्रकाशित की जाय। जो जिसकी इच्छा हो वह अपने योग्य प्रकरणके मंत्र चुने और उनसे हवन करे और लाभ उठावें। पूर्वोक्त विषय जितने दिये हैं उनसे अधिक भी हो सकते हैं। मंत्रोंको अर्थके अनुसार रखा जाय तो जितने विषय होंगे उतने शीर्षक करना योग्य होगा।

इस समय मंत्रोंके सरल अर्थ अनेक विद्वानों के द्वारा प्रसिद्ध हुए हैं। उनके पढनेसे किस शीर्षक के अन्दर यह मंत्र या सूक्त आसकता है, इसका ज्ञान हो सकता है। प्रत्येक मंत्रको पृथक् करनेकी अपेक्षा सूक्तोंको छांटना अधिक सरल है। सूक्तमें जिस सुख की प्राप्तिकी प्रार्थना मुख्यतया है वह सूक्त उस शीर्षक में रखा जावे।

दस पांच पंडित मुद्रित भाष्योंकी सहायतासे १५।२० दिनोंमें भी इतना कार्य कर सकते हैं। इस प्रकरणशः विभाजित सूक्तोंको देखकर साधारण पुरुषभी अपनी कामना पूर्ण होनेके लिये अपने प्रकरण चुनकर अपनी अभीष्ट कामना की सिद्धिके लिये मंत्र पाठभी कर सकता है और उन मंत्रोंमे उक्त देवताओंकी प्रार्थना करके हवन भी कर सकते हैं। इस तरह का कृत्य मंत्रोंमें उक्त होनेसे लाभकारी भी हो सकेगा।

विभिन्न इष्ट और अनिष्ट प्रकरणोंके मंत्रोंकी संकीर्णता जैसी इस समय हो रही है, वैसी ऐसे प्रकरण बनने पर नहीं होगी। यज्ञ करनेवालोंका भी यज्ञपर विश्वास बढेगा और श्रद्धायुक्त शुभ कर्मसे जो लाभ होनेकी संभावना है वह सब लाभ ऐसे कर्मोंसे होगा।

आशा है वेदके श्रद्धालु इस लेखका योग्य रीतिसे विचार करेंगे।

जनतामें वेदमंत्रोंपर और यज्ञ विधिपर श्रद्धा है। इस श्रद्धासे सुयोग्य कार्य करवाना पंडितोंका कर्तव्य है। जिस समय पण्डित ही विचार न करते हुए अन्त्येष्टी संस्कारके मंत्रोंको सुखशान्तिकामनाके कर्मोंमें बोलनेसे हिचकते नहीं, उस समय जो कर्म होंगे वे विधियुक्त होंगे, या अविधि युक्त होंगे, इसका विचार सबको करना चाहिये। यदि वेद मंत्रोंमें कुछ शक्ति है और वेदमंत्रोमें कहा कर्म मनुष्योंको उन्नति करनेवाला है, तब तो मंत्रमें कौनसा कर्म विहित है और वह किस समय करना चाहिये यह देखकर वैसा ही करनेसे लाभ होगा अन्यथा हानि होनेमें संदेह नहीं है। पंडित लोग श्रद्धालु जनता को हानिसे बचावें।

श्री. दा. सातवळेकर

कुछ विचारणीय प्रश्न

१ क्या अन्त्येष्टी, प्रेतदाह, प्रेतसंस्कार आदि के लिये ही जो मंत्र हैं, वे मंगलकामना की सिद्धिके लिये किये जानेवाले यज्ञमें बोलने योग्य हैं?

२ जो मंत्र ब्राह्मणों, श्रौतसूत्रों, मीमांसाकारों आदिकोंने किसीभी यज्ञमें इस समयतक विनियुक्त नहीं किये हैं और किसी प्राचीन यज्ञकर्ताने जिनको यज्ञमें कभी पढा नहीं है, उनको पढकर क्या हम यज्ञ करें? जैसा वा. यजु. का ४० वां अध्याय आजतक वैदिक कर्ममें प्रयुक्त नहीं हुआ, ऐसे ही आत्मा देवता वाले अनेक मंत्र हैं।

३ जो विवाह संस्कारमें प्रयुक्त होनेवाले मंत्र हैं वे विश्वशांति आदि प्रयोजन की सिद्धिके लिये किये जानेवाले यज्ञमें बोलने चाहिये? जैसा 'गृभ्णामि ते' यह मंत्र है। इसमें वर वधुसे कहता है कि 'प्रभुकृपासे मैंने तुम्हारा पाणिग्रहण किया है।' ऐसे मंत्र क्या ऐसे शान्ति यज्ञमें पढने योग्य हैं?

४ अश्वमेध, राजसूय जैसे सम्राटोंको ही करने योग्य यज्ञके तथा सर्वस्व त्याग करनेके विश्वजित् तथा सर्वमेध आदि यज्ञोंके मंत्र सर्वस्वका त्याग न करनेवाले यजमान के द्वारा किये जानेवाले सकाम यज्ञमें बोले जा सकते हैं? क्या इसमें प्रतिज्ञा भंग होनेकी संभावना तो नहीं है?

ॐ

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

भारतवर्षमें सर्वत्र पूजा, उपासना, आराधना करनेके पश्चात् बडे आवाजसे " ओ ३ऽऽऽऽम् शा ३ ऽऽऽऽऽ न्तिः, शा ३ऽऽऽऽ ऽ न्तिः, शा ३ऽऽऽऽऽ न्ति." ऐसा गर्जना करके कहते हैं। सन्ध्या करनेके अन्तमें, उपासनाके अन्तमें, प्रवचनके अन्तमें इस तरह त्रिवार शान्तिका उच्चारण किया जाता है। कई स्थानोंपर जहां सामुदायिक उपासना करते हैं, वहां उपासनाकी समाप्तिके पश्चात् सब मिलकर इस शान्तिका घोष त्रिवार करते हैं। सब हिंदु वे सनातनधर्मी हों, आर्यसमाजी हों, या नवमतवादी धार्मिक हों, वे अवश्य इस त्रिवार शान्तिका घोष करेंगे। इस त्रिवार शान्तिमें ऐसा एक मंगलस्वर है, कि जो इसका घोष एकाग्र मनसे करता है, उसके मनमें सचमुच शान्तिके लिये स्थान हुआ है ऐसा प्रतीत होता है। उसको इसके बोलनेके समय इस शान्तिके आस्वादका अनुभव होता है।

त्रिवार शान्तिका ध्येय

इस त्रिवार शान्तिका ध्येय क्या है? यह शान्ति पद तीन ही वार क्यों बोला जाता है, उसके पूर्व ' ओं ' कार क्यों बोला जाता है? इसका हेतु क्या है? किस साध्यका यह साधन है? इसका विचार करनेसे पता लग सकता है कि, तीन स्थानोंमें शान्ति स्थापन करनेके लिये यह तीन वार शान्ति पदका घोष किया जाता है।

१ शान्तिः— व्यक्तिमें शान्ति स्थापन करनी है,
२ शान्तिः— राष्ट्रमें शान्ति स्थापन करनी है, और
३ शान्तिः— जगत्में शान्ति स्थापन करनी है।

यह त्रिवार शान्तिका अर्थ, उद्देश्य और ध्येय है। मनुष्य इस पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ है, वह इन तीनों शान्तियोंकी स्थापना यहां करनेके लिये ही जन्मा है। पृथ्वीपर इन तीनों शान्तियोंकी स्थापना होनी चाहिये। यहां इस पृथिवीपर अशान्ति रहनी नहीं चाहिये। यह इस पृथिवी पर शान्तिस्थापन करनेका कार्य यहां रहनेवाले मनुष्योंको ही करना चाहिये। यह कार्य यहां कोई दूसरे स्थानसे आकर कर नहीं सकेगा।

आध्यात्मिक कष्ट

इस समय हम देख रहे हैं कि व्यक्तिके शरीरमें नाना प्रकारके रोग होते हैं, इन्द्रियोंकी कमजोरियां हैं, मनमें काम क्रोध लोभ मोह मद तथा मत्सर आकर बडा कोलाहल मचा रहे हैं, कुविचार कुमतियां और कुबुद्धियां यहां निवास कर रही हैं, पापसकल्प वारंवार किये जाते हैं, कुकल्पनाएं वारंवार आकर सता रही हैं। इस तरह एक व्यक्तिमें अशान्ति, दुःख कष्ट भोगने पड रहे हैं। इनसे कोई छूटता नहीं। इनका नाम आध्यात्मिक दुःख है। ये दूर होने चाहिये और आध्यात्मिक शान्ति, आनन्द और प्रसन्नता मनुष्यको प्राप्त होनी चाहिये। ये आध्यात्मिक कष्ट शरीर, इंद्रियां, मन, बुद्धि, पाचन, उत्सर्जन आदि अवयव और उनकी क्रियाओंके संबंधसे हो रहे हैं। कोई मनुष्य ऐसा मिलेगा नहीं कि, जो इन कष्टोंसे बचा हो। मनुष्यने इनसे बचनेके लिये वैद्यशास्त्र, चिकित्साके अनन्त उपाय निर्माण किये हैं, पर उपायोंकी अपेक्षा रोग ही अधिक बढ रहे हैं और मनुष्योंको दिन रात दुःख दे रहे हैं जिनसे यह मानव सर्वदा अशान्त हो रहा है।

आधिभौतिक कष्ट

अब दूसरी अशान्ति राष्ट्रीय अशान्ति है। इस विषयमें हरएक राष्ट्रमें पीडा है। हडताले हो रही हैं, मजूरोंके संघर्ष चल रहे हैं, राजा प्रजाके उपद्रव बढ रहे हैं, पूंजी-

पति और कर्मचारियोंके वैमनस्य बढ रहे हैं, युद्ध खडे हो रहे हैं, नये नये संहारक अस्त्र मानव संहारके लिये निर्माण किये जा रहे हैं। युद्धके साधन बढाये जा रहे है, समझोतेके लिये सभायें होती हैं उनमेंसे ही युद्धकी ज्वाला भडक उठती है। शान्तिके प्रस्तावसे संघर्ष नये नये रूप धारण करके प्रजाजनोंको कष्ट दे रहे हैं। विवाह विच्छेद होकर कुटुंबकी बुनियाद ही टूट जाती है, इसका विचार करनेके लिये भी किसीको समय नहीं है। व्यापार व्यवहारमें काला बाजार हो रहा है और गरीबोंका संसार टूट रहा है। धन-का मूल्य कम हो रहा है और महर्घता बढ रही है। मनुष्योंके अन्दरकी मानवता नष्ट होकर पशुता बढ रही है। स्त्रियोंका साम्प्रदायिक अपहरण होकर सहस्त्रों कुटुंब दु:खाग्नि में जल रहे हैं, पर इसकी पर्वाह किसीको नहीं है। प्राचीन समयमें सिंहव्याघ्रादि क्रूर पशुओंका ही भय था। पर मानवी सिंहव्याघ्रोंकी क्रूरता उससे भी अधिक हो रही है।

यह आधिभौतिक कष्टोंका स्वरूप है। प्राणिमात्रसे होने-वाले कष्ट आधिभौतिक कहलाते हैं। इस कष्टका संक्षेपसे स्वरूप यह है। यह हरएक राष्ट्रमें है। अब आधिदैविक कष्टोंके विषयमें देखिये—

आधिदैविक कष्ट

आधिदैविक कष्ट सब प्रकारके जागतिक कष्ट हैं। भूचाल, अग्निदाह, बिजलीके पतनसे आग, अतिवृष्टी, अना-वृष्टि, नदीकी बाढ, समुद्रमें जहाजोंका डूबना, विमानोंका पतन, भूमिका विदीर्ण होना, ज्वालामुखीका उद्रेक आदि अनेक प्रकारके ये कष्ट हैं। पञ्चमहाभूतोंसे जो उपद्रव होते हैं वे सब इसमें आते हैं। झंझावात, अग्निकाण्ड, ओलोंकी हिमवृष्टी, उससे शस्यका नाश, कृमीयोंके कारण वनस्पतियोंका नाश, सूर्यके तापसे नाश, अतिशीतसे नाश ये सब इस आधिदैविक कष्टोंमें शामील हो सकते हैं। विज्ञानसे जो संहारक शस्त्र निर्माण हो रहे हैं वे वास्तवमें आधिदैविक हैं, परंतु उनका प्रयोग मनुष्य करते हैं, इस-लिये उनका समावेश आधिभौतिक कष्टोंमें भी हो सकता है। सारांशसे आधिदैविक दुःखोंका यह स्वरूप है।

मनुष्योंको ये सब कष्ट दूर करनेके लिये यत्न करना चाहिये। मनुष्यकी उत्पत्ति इसी कार्यके लिये हुई है। यहां आकर मनुष्यको जो पुरुषार्थ करना है वह यही है। आध्यात्मिक दुःख अपने शरीरके अन्दर होते हैं, आधिभौ-तिक दुःख इस पृथ्वीपर, राष्ट्रमें अथवा बाहर प्राणियोंसे होते हैं और आधिदैविक दुःख पृथिवी, आप, तेज, वायु आदि देवताओंके कारण होते हैं। ये तो होते ही रहेंगे। और मनुष्यको इन्हें हटानेके लिये सतत दक्षतासे प्रयत्न करना ही चाहिये।

क्या ऐसा प्रयत्न अकेला मनुष्य कर सकता है, या सामू-हिक रूपसे राष्ट्रीय शासन शक्तिद्वारा इसके लिये प्रयत्न करना चाहिये। इसका विचार अब करना चाहिये। हमारे इतने विचारसे यह सिद्ध हुआ कि, (१) मनुष्यके शरीर के अन्दरके दुःखोंको दूर करनेका कार्य स्वयं मनुष्य कर सकता है, (२) राष्ट्रके अन्दर होनेवाले दुःखोंको राष्ट्रके शासक दूर कर सकते हैं और (३) राष्ट्रके बाहरके सब दुःखोंको दूर करनेका कार्य राष्ट्रसमूह कर सकता है।

जागतिक शान्ति

हम सब 'ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः' ऐसी घोषणा करते है, पर विचार करनेसे पता लग सकता है कि हमारे त्रिविध दुःखोंको दूर करनेका साधन हरएक व्यक्ति-के पास नहीं होता है। प्रथम 'जागतिक शान्ति' के विषयमें सोचेंगे। विश्वशान्तिके दो विभाग हैं। एक वह अशान्ति है कि जो दो राष्ट्रोंके संघर्षसे उत्पन्न होती है और दूसरी वह कि जो अनावृष्टि अतिवृष्टि आदि दैवीकारणोंसे होती है। इसमें एक व्यक्ति क्या कर सकती है? अनेक प्रबल राष्ट्र मिलकर इस विषयमें कुछ कर सकते हैं। इस समय रशिया और अमेरिका ये दो राष्ट्र प्रबल हैं और प्रभावी भी हैं। ये मिलकर विश्वशान्तिकी योजना करना चाहें तो कर सकते हैं। जागतिक युद्ध ये बंद भी कर सकते हैं और शुरू भी कर या करवा सकते हैं। आज पृथ्वीपर इन-को छोडकर दूसरा कोई ऐसा नहीं है कि, जो जागतिक शान्तिकी स्थापना या जागतिक शांतिका विनाश कर सकता है। इसके अतिरिक्त भूचाल, ज्वालामुखी, नदीकी बाढ आदिके लिये उपाय योजना करना है तो भी ये जो दोचार बडे बडे राष्ट्र हैं वे ही मिलकर विज्ञानकी सहायतासे कुछ कर सकते हैं। कोई एक व्यक्ति इस कार्यको कर सके ऐसा इस समय इस पृथ्वीपर नहीं है।

रशिया तथा अमेरिकाके अतिरिक्त कोई अन्य राष्ट्रके मन्त्री या कोई प्रधानमंत्री भी इस जागतिक शान्तिका कार्य नहीं कर सकते, फिर अन्य व्यक्ति नहीं कर सकेंगे, इसमें संदेह ही क्या है ? इस तीसरी शान्ति द्वारा वैदिक धर्मने लोगोंपर कितना बडा दायित्व रखा है वह देखिये। वैदिक धर्ममें इतना बडा कार्यक्रम रखा है जो मानवोंको करना चाहिये। हर कोई कहेगा कि इस जागतिक शान्तिके कार्यक्रमको न तो व्यक्तिशः हम निभा सकते हैं और न संघशः पूर्ण कर सकते हैं। इस कार्यक्रमको करनेके लिये जितनी शक्ति चाहिये, उतनी शक्ति हममें नहीं है। जो राष्ट्र विश्वभरमें अत्यंत प्रबल राष्ट्र होंगे, वेही मिलकर इस विश्वमें शान्ति रखनेके कार्य कर सकते हैं। उनसे भिन्न कोई मनुष्य जागतिक शान्तिके लिये प्रयत्न भी नहीं कर सकता, फिर इसको पूर्णतया निभाना तो बहुत ही दूरकी बात है। इतने महत्त्वका यह कार्यक्रम है।

राष्ट्रीय शान्ति

जागतिक शान्ति एक व्यक्ति नहीं स्थापन कर सकती है तो न सही, परंतु राष्ट्रमें शान्ति तो एक व्यक्ति स्थापन कर सकती है, ऐसा कोई कह सकते हैं। पर वह भी सत्य नहीं। राष्ट्रमें गुण्डोंका उपद्रव, चोर, खूनी, डाकू, आदि दुष्ट लोगोंके उपद्रव एक व्यक्ति किस तरह दूर कर सकती है ? व्यक्तिकी शक्ति इस कार्यके लिये पर्याप्त नहीं है। जिस समय राष्ट्रकी शासक शक्ति राष्ट्रमें शान्ति स्थापन करनेके लिये अपनी सब शक्ति लगायेगी, गुण्डोंका दमन करेगी, सज्जनोंका परित्राण करेगी, शान्तिकी स्थापना करेगी, उस समय राष्ट्रमें शान्तिस्थापन हो सकेगी। अर्थात् यहां भी एक व्यक्तिका सामर्थ्य पर्याप्त नहीं है। राष्ट्रकी संपूर्ण शक्ति राजाके अथवा महामंत्रीके आधीन रहती है। उसकी आज्ञासे वह राष्ट्रशासन शक्ति कार्य करनेमें प्रेरित होती है। इसलिये राष्ट्रमें शान्ति स्थापन करना या न करना यह सब राजा अथवा महामंत्रीके अधीन है। दूसरी किसी व्यक्तिके अधीन नहीं है।

तीसरी शांति जागतिक है और यह दूसरी शान्ति राष्ट्रीय है। ये दोनों शान्तियां किसी भी एक व्यक्तिके प्रयत्नसे सिद्ध होनेवाली नहीं हैं। राष्ट्रीय शान्ति शासककी प्रेरणासे सिद्ध हो सकती है और जागतिक शान्ति प्रबल राष्ट्रोंके शासकोंके संघटित प्रयत्नसे सिद्ध हो सकती है। व्यक्ति कितनी भी आत्मिक शक्तिसे युक्त क्यों न हो, वह इन शान्तियोंकी स्थापना नहीं कर सकती। राष्ट्रशासकोंके संघटित प्रयत्नोंसे ये दोनों शान्तियोंकी स्थापना हो सकती है, अन्यथा नहीं। अब वैयक्तिक शान्तिके विषयमें देखिये—

वैयक्तिक शान्ति

आध्यात्मिक शान्ति व्यक्तिके शरीर, इंद्रियां, मन, बुद्धि तथा आत्माके अन्दरकी शान्ति है। इसलिये इसको वैयक्तिक शान्ति कह सकते हैं। कई लोग कहते हैं योग आदि साधनोंके अनुष्ठानसे यह वैयक्तिक शान्ति प्राप्त हो सकती है। परंतु इसमें भी कई बातें विचार करने योग्य हैं।

योगसाधन करनेसे वैयक्तिक शान्ति प्राप्त हो सकती है यह सत्य है, पर योगसाधन कहां हो सकता है, देखिये-

योगसाधनके लिये योग्यस्थान

सुभिक्षे धार्मिके देशे। यो० प्रदीपिका

' जिस देशमें अच्छा अन्न मिलता है और जिस देशमें धार्मिक राज्यशासन है, जहां धार्मिक लोग रहते हैं। उस देशमें योगसाधन हो सकता है। ' हरएक स्थानपर योगसाधन नहीं हो सकता। जिस देशपर धार्मिक शासकोंका राज्य नहीं है, जहां गुण्डोंका राज्य है, मारपीट, खून, डाके, आदि जहां होते रहते हैं, जहां शान्ति नहीं रहती, जहां उत्तम अन्न मिलता नहीं, वहां योगसाधन नहीं हो सकता। योगसाधन करनेके लिये आदमी बैठ जाय, और बाहर मारपीट चलती रहे, जाळपोळ होती रहे, लूट और डाके होते रहें, तो इस साधकको अपने जीवनकी सुरक्षितता नहीं रहेगी और ऐसी अशान्तिमें यह योगसाधन कभी नहीं कर सकेगा। फिर इसे ऐसे गुण्डोंके देशोंमें योगसाधनसे शान्ति किस तरह प्राप्त हो सकेगी ? इसलिये वैयक्तिक शान्ति भी योगसाधन पर निर्भर है और योगसाधन उक्त कारण उत्तम राज्यशासनसे ही होनेवाला है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि व्यक्तिमें शान्ति, राष्ट्रमें शान्ति और जगतमें शान्ति ये तीनों शान्तियां उत्तम सुयोग्य राज्यशासनसे ही सिद्ध होनेवाली हैं। विना उत्तम सुयोग्य राज्यशासनके ये शान्तियां सिद्ध होनेवाली नहीं हैं।

अब तीसरी शान्तिमें और एक विभाग है, उसका विचार करनेका कार्य शेष है। वह है भूचाल, ज्वालामुखी, विद्युत्पतन, अतिवृष्टी आदि अशान्तिको दूर करना । यह भी राजाश्रयसे ही हो सकेगा तो हो सकेगा। व्यक्तिके प्रयत्नसे इसमें कुछ होगा ऐसा दीखता नहीं है। इसका कारण यह है कि इसका प्रबंध करनेके लिये जो व्यवस्था करनी पडेगी वह अत्यंत व्ययसे होनेवाली है और उतना व्यय कोई एक व्यक्ति कर नहीं सकती।

बडे प्रबन्धोंका कार्य

जैसा अनावृष्टीका प्रतीकार नहर आदिके प्रबंधसे हो सकता है, अतिवृष्टीका प्रतीकार जलके लिये उत्तम पर्याप्त विस्तृत गमन मार्ग कर देनेसे हो सकता है। इस तरहके बडे बडे प्रबंध करनेका कार्य शासक संस्थाके द्वारा हो सकता है। यह कार्य व्यक्तिकी शक्तिसे होनेवाला नहीं है। इन आपत्तियोंमें कई आपत्तियां ऐसी हैं कि उनका प्रतीकार करनेके साधन मनुष्यके पास इस समय नहीं है। जैसे प्रचंड वायु प्रकोपको रोकनेका कार्य मनुष्य कर नहीं सकता, क्योंकि उसके पास आज वायुवेगको रोकनेके साधन अधिक व्यय करनेपर भी नहीं है। अस्तु इसका तात्पर्य यह है कि ये सब आपत्तियोंको रोकनेके प्रबंध शासकसंस्था कर सकेगी, तो ही होंगे। व्यक्तिके प्रयत्नसे इसमें कुछ भी बननेवाला नहीं है। जो व्यक्तिके अन्दर परिणाम करनेवाला योगसाधन है, वह भी सुराज्यमें ही होनेवाला है, गुण्डोंके जहां उपद्रव होते रहते हैं, वहां योगसाधन भी नहीं होगा। फिर अन्य साधनोंका तो निःसंदेह राजाश्रय पर ही अवलंबन है। सारांशसे यह कह सकते हैं कि, इन तीनों शान्तियोंकी साधना राज्यशासक शक्ति पीछे रही, तो ही हो सकती है, अन्यथा नहीं हो सकती।

बलसे होनेवाला कार्य

इससे पता लग सकता है कि ' ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ' का घोष करनेसे राजकीय दायित्व हमारे पर कितना आता है। प्रत्येक वैदिकधर्मीको इसका विचार करना चाहिये और यह दायित्व निभानेके लिये कटिबद्ध रहना चाहिये। यदि आप इन तीनों शान्तियोंको घोषणा करनेकी इच्छा करते हैं, तब तो आपको अपने पीछे प्रबल शासनसंस्थाको खडा करना चाहिये। नहीं तो निर्बलकी घोषणासे क्या बनेगा ? जगत्‌के अन्दर निर्बल रह सकेगा या नहीं यह भी संदेह है। क्योंकि बलसे ही यहां सब खडे हैं, बल चला जाय तो सब नीचे गिर जायगे। खडा रहकर कार्य करना बलसे होनेवाली बात है। इसी तरह तीनों शान्तियोंकी स्थापना करना बलसे ही होनेवाला कार्य है।

पुरुषार्थका धर्म

' ओं शान्तिः शान्तिः शान्ति ' यह घोषणा तो कोई निर्बल भी कर सकेगा, पर इस घोषणाकी पूर्णता करना, विना राजकीय शक्तिके विशेष प्रबल रूपमें पीछे रहे, नहीं हो सकता। वैदिक धर्ममें रहनेवाले सब व्यक्तियोंको, जो समय समयपर इन तीन शान्तियोंका घोष करते हैं, उनको इस दायित्वकी उत्तम कल्पना आनी चाहिये। वैदिक धर्म पुरुषार्थका धर्म है पुरुषार्थ प्रयत्न करने वाले हो यहां यशस्वी होंगे। जो आलसी और दुर्बल रहेंगे, वे पीछे पडेंगे। अब हमें देखना है कि इन तीनों शान्तियोंकी स्थापना करनेकी साधना किस तरह करनी चाहिये।

वैदिक धर्म सामुदायिक जीवनका धर्म है। यह केवल वैयक्तिक जीवनका धर्म नहीं है। वैयक्तिक जीवन और सामुदायिक जीवनका समविकास इसमें हैं। समाजवादियोंकी तरह यहां व्यक्तिको दबाकर समाजकी ही संघटनाशक्तिका विकास करनेका यत्न करनेकी घातक मनीषा यहां नहीं है और न वैयक्तिक विकासवादियोंकी तरह, यहां समाजकी ओर पूर्ण दुर्लक्ष्य करके वैयक्तिक गुणविकास करनेकी मूर्खता भी यहां नहीं है। यहां वैदिक धर्ममें तो व्यक्तिके गुणोंका पूर्ण विकास करनेका कार्यक्रम परिपूर्ण रीतिसे बनाया है और सामाजिक तथा राष्ट्रीय विकासका भी उत्तम कार्यक्रम है। समविकास करनेका यह धर्म है। इसलिये इसमें किसी बातमें अधूरापन नहीं है। ऐसा यह समविकासका वैदिक धर्म मनुष्योंको व्यक्ति, राष्ट्र और विश्वमें स्थायी शान्ति स्थापन करनेका उत्तम कार्यक्रम दे रहा है।

वैयक्तिक शान्ति

वैयक्तिक शान्तिका अर्थ व्यक्तिके शरीरके अन्दरकी शक्तियोंकी शान्ति, समता अथवा अस्वस्थताका दूर होना। व्यक्तिके शरीरमें प्रथम स्थूल शरीर है जो बाहरसे दीखता

है। स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीर ये तीन शरीर एक दूसरेके अन्दर हैं। स्थूल शरीरमें सूक्ष्म और कारण शरीर भरपूर व्यापक हैं। इनको ही अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, और आनन्दमय कोश कहते हैं।

कोशका अर्थ थैली, ये थैलियां एक दूसरेके अन्दर हैं। अन्नमय कोश यह स्थूल शरीर है जो अन्नसे पुष्ट होता है, प्राणमय कोश इसके अन्दर है, जो जलसे तथा प्राणवायुसे पुष्ट होता है। मनोमय शरीर मन ही है, चित्त, मन, अन्तःकरण अहंकार ये यहां हैं। विज्ञानमय कोश बुद्धि है और आनन्दमय कोश आत्मा ही है।

स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीर कहो, अथवा अन्नमय-प्राणमय-मनोमय-विज्ञानमय-आनंदमय कोश कहो, तो भी भाव एक ही है। इसी विषयको हम आधुनिक रीतिसे वर्णन करते हैं।

स्थूल--शरीर

प्रथम स्थूल शरीर लीजिये। हरएक प्राणी इसे देख सकता है। इसीसे व्यवहार करता है। प्रतिदिनके अनुभवसे वह जानता है कि स्थूल शरीर स्वस्थ रहा तो हमारे सब कार्य ठीक तरह होते हैं नहीं तो नहीं होते। इस स्थूल शरीरमें नाना प्रकारके रोगोंकी संभावना है। किसी न किसी अशुद्धिके होनसे यहां रोग उत्पन्न हो जाते है। अशुद्धिके दूर होनेसे रोग चले भी जाते हैं।

आयुर्वेद

इन रोगोंको हटानेके लिये ऋषियोंने आयुर्वेद बनाया है। यह विशेषतः स्थूल शरीरकी चिकित्सा करता है। क्वचित् मानसचिकित्साका भी अन्तर्भाव इसके कार्यमें होता है। शारीरिक चिकित्सामें इंद्रियोंकी चिकित्सा आचुकी है। युरोप अमेरिकाका चिकित्साशास्त्र भी बढ रहा है। अनेक चिकित्साके साहित्योंसे यह शास्त्र उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसमें एक एक इंद्रियके विशेष ज्ञानी चिकित्सक हैं। शस्त्र वैद्य भी अच्छे अच्छे हैं। यह सब आयुर्वेद, अलोपथी और यूनानी चिकित्सा इसलिये हो रही है कि, इससे शरीर और इंद्रियां उत्तम अवस्थामें रहें और मनुष्यको सुदृढ शरीरके साथ उत्तम नीरोग और कार्यक्षम इंद्रियां मिलें और इसको दीर्घायु प्राप्त हो। केवल शरीर और इंद्रियोंकी स्थायी शान्ति स्थापन करनेके लिये कितने शास्त्र हुए हैं और कितने साधन बढ रहे हैं, देखिये। कोई एक मनुष्य अपने जीवनमें इसमें पारंगत नहीं हो सकता, इतना इस चिकित्सा शास्त्रका विस्तार हुआ है, और प्रतिदिन यह बढ रहा है। यह किसलिये हो रहा है? यह मनुष्यके शरीरमें स्थायी शान्ति स्थापन हो इसलिये यह सब संभार है। कितने ग्रंथ, कितने विद्वान् और कितने साधन मनुष्यके आध्यात्मिक अर्थात् शरीर और इंद्रियोंमें स्थायी शान्ति स्थापन करनेके लिये लग रहे हैं।

योगसाधनका मार्ग

इतने ही नहीं परंतु ऋषिमुनियोंने योगसाधनका और एक उत्तम मार्ग शुरू किया है। जिसके आसन तथा धौति बस्ती, त्राटक आदि साधन शरीर और इन्द्रियोंके स्थानमें स्वस्थता और स्थायी शान्तिस्थापन करनेके लिये ही महामुनि पतञ्जलि आदिकोंने सिद्ध किये है। धौतीसे पेट और पेटके उपरका अन्ननलिकाका मार्ग स्वच्छ और निर्दोष होता है। बस्तीसे नीचेका पेटका भाग निर्दोष होता है। त्राटकसे आंख निर्दोष होते हैं। इस तरह पञ्चशुद्धिसे सब शरीर शुद्ध पवित्र और निर्दोष होता है। नीरोग और स्वस्थ होता है और शुद्धताका आनन्द मनुष्यको मिलता है।

आसनसे शरीरकी नसनाडियां, पुट्ठे आदि भाग निर्दोष और बलवान होते हैं। स्वस्थ होते है और रोगोंको दूर करनेकी शक्ति इस शरीरमें बढाते हैं। यह योगशास्त्र ऋषि-मुनियोंकी देन है जो आध्यात्मिक उन्नतिका साधन करनेके लिये सुयोग्य शरीरका निर्माण करता है।

(चित्र पृष्ठ ६-७-१५ पर देखो)

पाठक यहां देखें कि मनुष्यका शरीर स्वस्थ रखनेके कार्य के लिये कितना विस्तृत कार्य करना पडता है। इस ज्ञानकी परिपूर्णता कोई एक मनुष्य अपने जीवनमें नहीं कर सकता। इतना यह विस्तृत ज्ञान है। इतने ज्ञानसे तो शरीरकी स्वस्थता हुई, इंद्रियोंका आरोग्य हुआ। इसके पश्चात् मनको स्वस्थ करनेकी बारी आती है।

मनकी स्वस्थता

वेदमें कहा है—

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः। यजु ५।१४



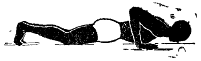
(१) प्रणाम।



(२) जानुनास।



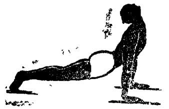
(३) एक पाद् प्रसरण।



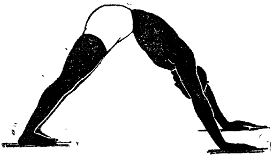
(५) साष्टांग प्रणिपात।



(४) तुलितवपु।

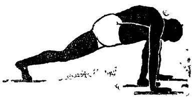


(६) कशेरुसंकोच।



(७) कशेरुविकसन।

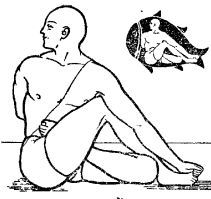
(९) जानुनास।
आसन दो देखो।



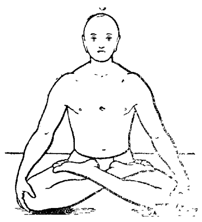
(८) एक पाद् प्रसरण।



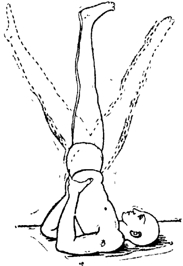
(१०) प्रणाम।



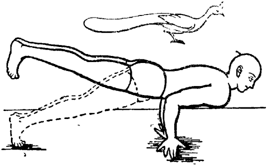
मत्स्येंद्रासन।



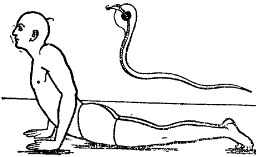
पद्मासन।



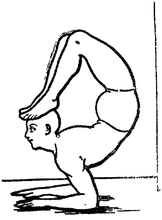
सर्वांगासन।



हंसासन। मयूरासन।



सर्पासन।



वृश्चिकासन।

'मनका योग करते हैं, बुद्धिका योग करते हैं' ऐसा जो कहा है वह मनकी स्वस्थता स्थापन करनेके लिये कहा है। मन अत्यन्त चञ्चल है, इसको स्वस्थ और शान्त करना बडा कठिन कार्य है। इसलिये इसके पूर्व आसन, प्राणयाम और प्रत्याहारका अभ्यास है। आसनाभ्याससे शरीरकी चंचलता दूर होती है और शरीरमें स्थैर्य आकर एक प्रकारका अपूर्व आनन्द मिलता है। प्राणायामसे मन स्थिर करनेमें बडी सहायता होती है, इसलिये कहा है कि—

चले वाते चलं चित्तं
निश्चले निश्चलं भवेत्। यो० प्रदीपिका

'प्राणकी गति चञ्चल होनेसे मन चञ्चल होता है और प्राण स्थिर हुआ तो मन स्थिर होता है' यह नियम होनेसे मनके स्थिरीकरणके लिये प्राणके स्थिरीकरणकी आवश्यकता है, इसलिये आसनसे शरीरको स्थिर करनेके बाद प्राणायाम का अनुष्ठान कहा है। इससे मन शान्तिका अनुभव करने लगता है। इसके पश्चात् प्रत्याहारका अभ्यास कहा है। विषयोंसे इन्द्रियों और मनको निवृत्त करना और अपने स्थानमें अथवा पवित्र आलंबन पर स्थिर करनेका यह अनुष्ठान है। इससे मनकी चञ्चलता दूर होती है। ध्यानधारणा समाधि ये आगेके अभ्यास हैं। जो मनको स्वस्थता और शान्ति देनेवाले हैं।

मनुष्यके शरीरमें अवयव, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और आत्मा इतने पदार्थ होते हैं। इनमें शान्तिस्थापन करनेकी सूचना पहिले 'शान्ति' पदने की है। उसका विचार यहां तक संक्षेपसे हुआ। इससे पता लगा कि इस कार्यके लिये नाना शास्त्रोंका अभ्यास करना आवश्यक है। किसी एक व्यक्तिके प्रयत्नसे इतना अध्ययन नहीं हो सकता। यह तो अनेक विद्वानोंके साहचर्य और सहकारितासे होनेवाला कार्य है। इसके साथ साथ राष्ट्रशासन भी ऐसा होना चाहिये कि जिसमें रहकर एक व्यक्ति अपनी उन्नतिके लिये यथेच्छ योगसाधन उत्तम रीतिसे कर सके। राष्ट्रमें शान्ति हो, समता और न्याय हो, वैयक्तिक अनुष्ठानके लिये आवश्यक स्वतंत्रता हो। अनुष्ठानके लिये सब साधनोंकी अनुकूलता हो। गौका दूध तथा घी यथेच्छ प्राप्त हो। शालीके चावल आदि योगाह्य पर्याप्त प्रमाणमें मिलता हो। किसी तरह गुण्डोंका उपद्रव न हो। योगसाधनके मठोंकी सुरक्षा शासनके सुप्रबंधसे होती रहे। ऐसी सब अनुकूलता रहेगी, तो योगसाधन होगा और मनुष्यको अपने अन्दरकी शान्तिका लाभ प्राप्त होगा।

अन्यथा योगसाधन हो नहीं सकेगा। चारों ओरसे गुण्डे आते हैं, हमला करते हैं, मारपीट हो रही है, धान, चावल, दूध, घी की न्यूनता है, जो मिलता है वह खानेके लिये मिलेगा ऐसा प्रबंध नहीं है। तो योगसाधन नहीं होगा और वैयक्तिक अशान्ति बनी रहेगी।

वैयक्तिक शान्तिके साथ योगशास्त्र, मानसशास्त्र, इंद्रिय विज्ञान, शरीरशास्त्र, आयुर्वेद, आदि शास्त्रोंका संबंध है। आरोग्य व्यवस्था राष्ट्रमें उत्तम हो, सुरक्षा हो, सस्ताई हो, झगडे फिसाद न हों, ऐसा होनेपर इस योगसाधनसे वैयक्तिक शान्तिका लाभ हो सकता है।

राष्ट्रीय शान्ति

व्यक्तिमें शान्ति योगसाधनसे स्थापित हो सकती है, पर योगसाधनका अनुष्ठान (सुभिक्ष धार्मिके राष्ट्रे) जहां सस्ताई है ऐसे धार्मिक राष्ट्रमें हो सकता है। जहां धार्मिक राज्यशासन है, वहां योगसाधन हो सकता है, यह हमने देखा। अब राष्ट्रीय अथवा सामाजिक शान्ति किस तरह स्थापन होती है वह देखिये। राष्ट्रीय शान्ति स्थापन करनेका मुख्य कार्य राज्यशासन द्वारा ही किया जा सकता है। राष्ट्रीय शान्तिके कार्यका प्रारंभ शिक्षाविभागसे होता है—

शिक्षा मंत्रीका कार्य— राष्ट्रमें सुशिक्षाका प्रचार और प्रसार सर्वत्र अच्छी तरह होना चाहिये। शिक्षामंत्रीका यह कर्तव्य है। सुशिक्षाके लिये योग्य ग्रन्थोंका निर्माण करना, सब बालकों और युवकोंको उसका प्रदान करके सुशिक्षित बनाना यह राष्ट्रीय शान्तिके लिये अत्यंत आवश्यक है। यह शिक्षा विभाग स्वतंत्र ऋषियोंके आधीन होता था। शासक उसका संरक्षण करे, पर उसके सुधारका भार स्वतंत्र वृत्तीके ऋषियोंपर रहे। गुरुकुलों द्वारा सुशिक्षाका फैलाव वैदिक समयमें होता था। और गुरुकुल राजाके द्वारा सुरक्षित परंतु विद्यावृद्धि करनेमें स्वतंत्र रहते थे। ऐसी व्यवस्था हरएक राष्ट्रमें रहनी चाहिये। नहीं तो राज्यशासकों के आधीन शिक्षाका कार्य जायगा और वे अपने रजोगुणसे पवित्र शिक्षाको कलुषित करेंगे, जिससे स्पर्धा और संघर्ष

बढेगा और सत्वगुण वृद्धिसे होनेवाली शान्ति कदापि स्थापन नहीं होगी। अस्तु राष्ट्रीय शान्ति इस सुशिक्षाके फैलाव पर अवलंबित है, जो सुशिक्षा सबको मिलनी चाहिये। सब जनता ज्ञानविज्ञानसंपन्न, सत्वगुण युक्त, स्वकर्तव्यको करनेवाली और शान्तिप्रिय होनी चाहिये, तब राष्ट्रमें शान्ति रह सकेगी।

गृहमन्त्रीका कार्य— राष्ट्रके अन्दर सुरक्षा रहनी चाहिये। राष्ट्रमें—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥ गी०

' राष्ट्रमें सज्जनोंका संरक्षण होना चाहिये, दुष्टोंका दमन होना चाहिये और वर्ण तथा आश्रमोंके कर्तव्योंका उत्तम रीतिसे पालन लोगोंके द्वारा होता रहे ऐसी सुव्यवस्था होनी चाहिये। अन्दरके गुण्डे लोग कभी उपद्रव न कर सकें और वे सज्जनोंको उपद्रव न दे सकें इतनी सुरक्षा राष्ट्रमें रहनी चाहिये। यह गृहमन्त्रीका कार्यक्षेत्र है। यह इनके द्वारा ही हो सकता है। एक व्यक्ति इसमें क्या कर सकती है?

राष्ट्र सुरक्षा— राष्ट्रके अन्तर्गत सुरक्षा रही तो भी बाहेरसे कोई शत्रु अपने राष्ट्रपर आक्रमण न करे और अपने राष्ट्रकी शान्तिका भंग न कर सके ऐसा प्रबंध रहना चाहिये। आन्तरिक सुरक्षाके लिये आरक्षकोंका सुप्रबंध रहना चाहिये और बाहरके शत्रुओं-को प्रतिबंध करनेके लिये उत्तम सेना सुसज्य रहनी चाहिये। यह युद्धमंत्रीका कार्यक्षेत्र है। राष्ट्रमें दुर्गोंकी सुव्यवस्था, स्थान स्थानमें सेना विभागोंका रक्षण, समुद्रपर सागर सेना और वैमानिक सेना आदि सर्वत्र चतुरंग बलकी सुसज्यता रहेगी, तो बाहरके शत्रु दब जांयगे और वे मित्रभावसे बर्ताव करने लगेंगे। अपनी युद्धकी तैयारी जितनी उत्तम रहेगी, उतने बाह्य शत्रु उपद्रव नहीं करेंगे। पर यदि अपनी निर्बलता रहेगी, तो उसी समय बाहरके शत्रु प्रबल होंगे और वे हमला करेंगे। ऐसी अवस्थामें एक एक व्यक्ति कितना भी शान्तिके लिये प्रयत्न करता रहेगा, तो भी वे सब प्रयत्न व्यर्थ जांयगे। इसलिये अपने राष्ट्रकी युद्धकी तैयारी अच्छी रही तो ही शान्तता रहनेकी संभावना है। वैदिक धर्ममें इन्द्रका कार्य देखिये, वह अपनी मरुतोंकी सेना सर्वदा सुसज्य रखता है, शत्रुका पूर्ण नाश करता है, शत्रुको भगाता है, शत्रुके नगरों और कीलोंका नाश करता है, अपने अनुयायियोंकी गौवें चुरानेवालोंको उग्र दण्ड देता है, उनसे गौवें वापस लाकर देता है। आदि कार्य हैं जो अपने राष्ट्र-को सुरक्षित रखते और शान्ति प्रदान करते हैं।

राष्ट्रमें ज्ञानी, शूर, व्यापारी और शिल्पी ऐसे चार प्रकारके लोग रहेंगे। उनमें शूर क्षत्रियों पर ही अन्दरके और बाहरके शत्रुओंको दूर करनेका भार रहता है। ये क्षत्रिय युद्धमें लगे रहनेपर भी नागरिक व्यवहार, अन्य तीन संघोंके नगरमें सुरक्षित रहनेके कारण, सुरक्षित रहता है। पर इसमें एक आपत्ति है, वह यह कि क्षत्रियसंघ पर ही युद्धका भार पडता है और बाकीकी जातियां आक्रमणकर्ता शत्रुको रोक नहीं सकती। इस कारण क्षत्रियोंका पराभव होते ही सब राष्ट्र शत्रुके आधीन हो जाता है। इस आपत्तिको हटानेके लिये राष्ट्रके सब लोगों-को स्वसंरक्षणार्थ युद्ध करनेकी शिक्षा कुछ मर्यादा तक मिलनी चाहिये। जिससे क्षत्रियोंका पराभव होनेपर भी अन्य नागरिक अपना संरक्षण कर सकेंगे और शत्रुको अन्दर घुसने न देंगे। अर्थात् ब्राह्मण-वैश्य-शूद्रोंको आपत्कालमें स्वसंरक्षण करनेके लिये शस्त्र ग्रहण और शस्त्र प्रयोग करने-की विद्या मिलनी चाहिये और क्षत्रियोंको तो युद्धविद्यामें प्रवीणता प्राप्त करनी चाहिये।

मनुका आदेश

शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते।
द्विजातीनां च वर्णानां विप्लवे कालकारिते॥
आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानां च संगरे।
स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च घ्नन् धर्मेण न दुष्यति॥
मनु० ८।३४८-९

' विप्लव उत्पन्न होनेपर द्विजातीके लोगोंको भी हाथमें शस्त्र लेना चाहिये और अपना संरक्षण करना चाहिये। आत्मरक्षण, स्त्री विप्र आदिके संरक्षणके लिये, गौ आदि पशुओंके संरक्षणके लिये शस्त्र लेकर शत्रुका वध किया तो उसका दोष कर्ताको लगता नहीं है। ' इस तरह आप-त्कालमें सब लोगोंको शस्त्रग्रहण करके स्वसंरक्षण करने-का अधिकार है और वह योग्य है। इससे यह स्पष्ट हो रहा है कि राष्ट्रमें युद्ध करनेकी शिक्षा तो सामान्यतः सब-को मिलनी चाहिये, परंतु क्षत्रियोंको विशेष मिलनी

चाहिये। सब लोग स्वसंरक्षण करनेके लिये तैयार रहने चाहिये। जब सब जनता ऐसी जाग्रत रहेगी, तब राष्ट्रमें शान्ति स्थापित हो सकती है।

राष्ट्रके शासन करनेमें राजा अथवा राष्ट्राध्यक्ष और उसके सब मंत्री लगे रहे, और अच्छी तरह उन्होंने राष्ट्रका शासन किया तो यह शान्ति स्थिर रह सकती है। हमने ऊपर दो तीन मंत्रियोंके कार्यका ही उल्लेख किया है, पर सभी मंत्री एकनिष्ठासे इस कार्यको करने लगे, तो राष्ट्रमें शान्ति रह सकती है। हमने विस्तार न हो इसलिये दो तीन मंत्रियोंके कार्यका उल्लेख किया है। राष्ट्रके अन्दरका प्रत्येक कार्य करनेवाला राष्ट्रमें शान्ति स्थापन करनेके लिये प्रयत्नशील होना चाहिये, तब यह कार्य होनेवाला है। राष्ट्रमें थोडेसे गुण्डे उठ खडे हुए तो वे भी अशान्ति मचा सकते हैं। इसलिये प्रत्येकको अपना कर्तव्य करना चाहिये।

राष्ट्रीय शान्ति चिरस्थायी रहनेके लिये ऐसा बडा दायित्व सब सामान्यत. प्रजाजनोंपर तथा विशेषतः शासकोंपर है। इतने प्रयाससे राष्ट्रीय शान्ति स्थापन हो सकती है। यह केवल 'शान्ति' के शब्दोच्चार मात्रसे नहीं हो सकती, यह तो इतने विवरणसे पाठक जान सकते हैं।

जागतिक शान्ति

अब रही तीसरी विश्वशान्ति। इसमें सब राष्ट्रोंने मिलकर शान्ति स्थापन करनेका यत्न करना चाहिये। तब इस भूमंडल पर शान्ति स्थापन हो सकती है। यदि बडे बडे राष्ट्रशासक न मिलेंगे, और भूमंडल पर शान्तिस्थापन करनेके लिये पराकाष्ठाका यत्न नहीं करेंगे, तो विश्वशान्ति होना बडा कठिन कार्य है। प्रत्येक राष्ट्रशासक जबतक अपना स्वार्थ ही देखेगा, और अपने स्वार्थसाधनके लिये जितना चाहिये उतने अनर्थ करता जायगा, तो विश्वशान्तिकी आशा कैसी की जा सकती है? मनुष्यके अन्दरका स्वार्थ कम हो और सबमें शान्ति स्थापन करनेकी प्रबल इच्छा हो, तब यह विश्व शान्ति स्थापन हो सकती है।

विश्वशान्तिमें भूचाल, अतिवृष्टी, अनावृष्टि सूर्यका प्रचण्डताप, झंझावात, जलकी प्रचंड बाढ आदि अनेक आपत्तियां हैं। इनका निवारण करनेका प्रयत्न सब राष्ट्रोंके सामूहिक रीतिसे ही हो सकता है। अन्यथा इसमें सफलता होनेवाली नहीं है।

शासक शक्तिकी सहायता

यहां तकके विवरणसे हमने देखा कि व्यक्तिमें शान्ति स्थापन करनेका कार्य हो, समाजमें या राष्ट्रमें शान्ति स्थापन करनेका कार्य हो अथवा विश्वशान्तिका प्रयत्न करना हो, ये सब कार्य राष्ट्रकी अथवा राष्ट्रोंकी शासन शक्तियां मिलेंगी और सामूहिक रूपसे कार्य करेंगी, तभी यह कार्य हो सकता है, अन्यथा नहीं होगा। व्यक्तिकी सदिच्छासे यह कार्य होनेवाला नहीं। पर यह यहां स्पष्ट करना चाहिये कि यदि व्यक्तिमें सदिच्छा है तो व्यक्तिको शान्तिके लिये यत्न करना चाहिये और शान्तिके विचार फैलानेका यत्न करना तो व्यक्तिके अधीन ही है।

शान्तिके विचारोंकी जाग्रति तो व्यक्ति कर सकती है। यह तो करना ही चाहिये। पर यह भी यदि शासक शक्ति इसके पीछे रही, तो ही इसमें सफलताकी संभावना अधिक हो सकती है। वैदिक धर्मने इन तीन शान्तियोंकी घोषणा करके कितना बडा कार्यक्रम करनेका भार लोगोंपर रखा है, यह देखिये। यह कर्तव्य इस लोकमें सुख शान्ति स्थापनार्थ करना चाहिये यह वेदका आदेश है देखिये—

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिः-
आपः शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः
शान्तिर्विश्वेदेवा शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः
सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः
सा मा शान्तिरेधि ॥ वा० य० ३६।१७

'द्यु. अन्तरिक्ष और पृथिवी पर शान्ति हो, जलमें शान्ति हो, औषधि वनस्पतियोंमें शान्ति हो, सब सूर्य आदि देवोंसे शान्ति प्राप्त हो, ज्ञान शान्ति स्थापन करनेवाला हो, सब जो भी यहां है वह शान्तिकी स्थापना करनेमें सहायक हो और जो शान्ति हो वह सच्ची शान्ति हो, ऐसी सच्ची शान्ति मुझे प्राप्त हो।' यह वेदका कथन बडा मननीय है। इसका थोडासा अधिक मनन करना चाहिये।

त्रिलोकीमें शान्ति

द्युलोकमें सूर्यादि देवता हैं, वहां शान्ति हो। सूर्यपर किसी कारण धब्बे आने लगे, तो उसका परिणाम वायुमण्डल पर तथा पृथिवीपर होता है और बडे कष्ट उत्पन्न होते हैं, इसलिये द्युलोकमें ऐसा कोई उत्पात न हो, कि जिससे यहां

कष्ट होने लग जांय। यह इच्छा उत्तम है। पृथ्वीपरका जीवन ही सूर्य की जीवन शक्तिपर अवलंबित है इसलिये द्युलोकमें शान्ति रही तो पृथ्वीपर शान्ति रहेगी। इसलिये इस मंत्रमें क्रमसे कहा है कि "द्यौः शान्तिः, अन्तरिक्षं शान्तिः, पृथिवी शान्तिः" यह योग्य ही है। यदि सूर्यलोकमें अशान्तिका प्रारंभ हुआ, तो मनुष्य वहां क्या कर सकता है? इसलिये यहां दिव्य परमात्मशक्तिसे प्रार्थना है कि द्युलोक और अन्तरिक्षलोकमें शान्ति रहे और तदनुरोधसे पृथिवीपर भी शान्ति रहे। इसके नंतर कहा है कि- 'आपः शान्तिः ओषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिः' अर्थात् औषधिजल और वनस्पतियोंमें शान्ति रहे।

जलका महत्त्व

जल एक प्रकारका जीवनरस है। यह एक अद्भुत औषधि-रस ही है। इसलिये कहा है-

अप्सु मे सोमो अब्रवीत्
अन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशंभुवम्
आपश्च विश्वभेषजीः। ऋ०

'सोमने कहा कि जलमें सब प्रकारकी औषधियां हैं। अग्नि सब प्रकारका कल्याण करनेवाला है और जलमें सब औषधियां हैं।' ऐसा यह प्रभावी जल शान्ति स्थापन करे, रोग दूर करे, आरोग्य देवे, बल बढावे और अशान्ति दूर करे। यह जलका कार्य है। शरीरमें क्या और विश्वमें क्या जलसे शान्ति होती है। प्रखर धूपके पश्चात्, ग्रीष्मसमयके नंतर जब वर्षा होती है, उस समय सर्वत्र एक दम शान्ति होती है। इसी तरह शरीरके दोष दूर करके शरीरमें जल जाकर विषमता दूर करता है और समता स्थापन करता है। इस तरह जल शान्तिस्थापन करनेवाला है। जलका रस ही औषधि वनस्पतियोंमें जाकर नाना प्रकारके रसोंसे मिलकर शरीरान्तर्गत दोषोंको चोडाल-लकर (ओषधीः दोषं धयन्ति) शरीरको निरोगिता प्रदान करना जलसे ही होता है। विश्वमें कितना महान् समता स्थापन करनेका कार्य यह जल कर रहा है वह देखने योग्य है।

"विश्वेदेवाः शान्तिः" सब देव शान्ति स्थापन करें। पृथिवी, आप, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र आदि सब देवता यहां शान्ति स्थापन करें, यह इसका तात्पर्य है। अग्नि और वायु ये जबतक शान्त रहते हैं तबतक ठीक है, परंतु जब ये ही भडक जाते हैं तब ये ही बडी अशान्ति उत्पन्न करते हैं। इसी तरह प्रत्येक देवताके संबंधमें है। इसलिये शान्तिस्थापनमें सब देवोंकी अनुकूलता होनी चाहिये यह इसका आशय है।

ज्ञान शान्तिस्थापन करनेवाला हो

'ब्रह्म शान्तिः' यह बडा महत्त्वका वचन है। जो ज्ञान यहां हमें प्राप्त होता है, वह शान्ति स्थापन करने-वाला हो, यह इसका तात्पर्य है। इस समय नाना राष्ट्रोंमें जो ज्ञान फैल रहा है, वह वास्तवमें अज्ञान है, अतएव वह भ्रान्ति विद्वेष फैला रहा है। यदि सत्यज्ञान जगत्में फैल जाय, तो वह समता तथा शान्ति फैलानेमें सहायता करेगा। इसलिये इस वेद वचनमें कहा है कि 'ब्रह्म शान्तिः' ज्ञान शान्ति फैलानेवाला हो। यह सत्य है। इसलिये जगत्में शान्ति स्थापन होनी चाहिये तो सत्यज्ञान, ब्रह्म-ज्ञान, राष्ट्रमें फैलना चाहिये। ज्ञान भी शान्ति बढानेवाला चाहिये। मनुष्य मनुष्यमें, जाति जातिमें, राष्ट्र राष्ट्रमें विद्वेष इस समय फैल रहा है, इसका कारण आजकलका ज्ञान ज्ञानका आभास उत्पन्न करनेवाला, परतु वस्तुत अज्ञान ही फैलनेवाला है। इसलिये इस वेदवचनने कहा है कि 'ज्ञान शान्ति देनेवाला हो' और वह राष्ट्रमें फैले। तब शान्तिस्थापन होनेमें सहायता होगी।

आगे 'सर्वं शान्तिः' सब जो भी कुछ है वह शान्ति स्थापनके कार्यमें सहायक हो ऐसा कहा है। जो भी प्रयत्न होता है, जो साधन मिलते हैं, जो भी विचार किये जाते हैं, वे सबके सब शान्ति बढानेवाले हों। सब शान्ति और समता स्थापन करनेवाले होंगे, तभी शान्ति स्थापन होगी। उनमें एक भी दुष्ट होगा, दोषी होगा तो वह सबका बना बनाया कार्य बिगाड देगा और उसके कारण अशान्ति फैल जायगी। इसलिये यह वचन बडा महत्त्वपूर्ण उपदेश कर रहा है कि सबके सब शान्ति स्थापनके साधन सचमुच शान्तिके सहायक ही हों।

शान्ति सच्ची शान्ति हो

'शान्तिरेव शान्तिः' जो शान्ति होगी वह सच्ची

शान्ति होनी चाहिये। यह तो बड़ा ही उत्कृष्ट तथा अर्थ-पूर्ण वचन है। शान्ति भी भ्रम उत्पन्न करनेवाली होती है जैसी मुर्देकी शान्ति है। यह सच्ची शान्ति नहीं है। यह तो मृत्यु है। हमें मृत्युकी शान्ति, परवशतामें जो अकर्मण्यता होती है वैसी नहीं चाहिये। हमें जीवित अवस्थाकी शान्ति चाहिये। इसलिये कहा है कि शान्ति भी सच्ची शान्ति होनी चाहिये।

ऐसी सच्ची शान्ति 'सा मा शान्तिः एधि' ऐसी उत्तम शान्ति हमें प्राप्त हो। ऐसा शान्तिके विषयमें वेदका कहना है। यह सब मंत्र महत्वपूर्ण उपदेश कर रहा है और शान्तिस्थापन करनेका मार्ग यह मंत्र बता रहा है। वेद इस शान्तिके विषयमें और अधिक क्या कहता है वह अब देखिये-

बुद्धि और धन

शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः।

ऋ० ७।३५।२

'हमारी बुद्धि शान्ति बढानेवाली हो और हमारे धन शान्ति फैलानेके कार्यमें लगें।' यह कितना उत्तम उपदेश है? इस समय लोगोंकी बुद्धि युद्ध बढानेके कार्य कर रही है। राष्ट्रोंके धन युद्धके साधन बढानेके कार्य कर रहे हैं। इसलिये वेद कहता है कि ऐसा नहीं होना चाहिये। बुद्धि और धन शान्तिके कार्यमें लगने चाहिये। तथा—

शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु।

ऋ० ७।३५।४

'पुण्य कर्म करनेवालोंके पुण्य कर्म शान्ति स्थापन करनेवाले हों।' नहीं तो वे ही युद्धकी चेतना बढानेवाले होंगे तो कितना अनर्थ होगा। तथा-

शमु सन्तु यज्ञाः... ...शमु अस्तु वेदिः।

ऋ० ७।३५।७

'यह शान्ति करनेवाले हों...और वेदी भी शान्तिका प्रचार करनेवाली हो।' पाठकोंको यहां आश्चर्य प्रतीत होगा कि यज्ञ और वेदी शान्ति स्थापन करनेवाली हो, ऐसा क्यों कहा है? क्या कभी यज्ञसे आपत्ति फैल सकती है? इस विषयमें इतना ही कहना है कि चाणक्यके अर्थशास्त्रमें ऐसे यज्ञ और उनमें हवन करनेके ऐसे हविर्द्रव्य कहे हैं कि ऐसे यज्ञोंसे राष्ट्रमें रोग फैलते हैं और मनुष्य मर जाते हैं, वे यज्ञ शत्रु राष्ट्रमें करनेके लिये हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि ऐसे यज्ञ हैं कि जो अशान्ति फैलाते हैं। इसलिये यहां कहा है कि यज्ञ और वेदी शान्ति स्थापन करनेवाले हों। अर्थात् रोग फैलनेवाले हवन कोई न करें, परंतु आरोग्य बढानेवाले ही यज्ञ किये जांय। तथा और कहा है--

राजा शान्ति स्थापन करे

शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः।

ऋ० ७।३५।१०

'राष्ट्रका राजा हमारे लिये शान्ति स्थापन करनेवाला हो।' यह तो हमने प्रारंभसे ही देखा है कि इन तीनों शान्तियोंकी स्थापना करनेके लिये शासककी अर्थात् राजाकी अनुकूलता चाहिये। विना राजा शान्तिस्थापनके लिये यत्न करे, किसी एक व्यक्तिके प्रयत्नसे शान्ति स्थापन हो नहीं सकती। इसीलिये यहां कहा है कि राष्ट्रका पति शान्तिस्थापन करनेवाला हो। यह राजा शान्तिस्थापन करनेवाला होगा, तो राष्ट्रमें शान्तिस्थापन होगी, अन्यथा गुण्डपन फैलेगा और अशान्तिके भंवरमें प्रजा त्रस्त हो जायगी। तथा—

शान्ति फैलानेवाली विद्या

शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ॥ ऋ० ७।३५।१२

'विद्या देवी अनेक लोगोंकी बुद्धियोंके साथ शान्ति स्थापन करनेवाली हो।' सरस्वती विद्या है। बुद्धिवान् लोगोंकी बुद्धियां इस विद्याका ग्रहण करती हैं और विद्याका प्रचार करती हैं। ये बुद्धियां शान्ति करनेवाली होंगी, तो ही अच्छा होगा, अन्यथा उलटा प्रचार होगा। इसलिये इस मंत्रने बडा उत्तम उपदेश दिया है। तथा—

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु।

शं नः सुकृतः सुहस्ताः। ऋ० ७।३५।१२

'सत्यके संरक्षक और पुण्यकर्म करनेवालोंके सुकृत शान्तिस्थापन करनेवाले हों' इन वचनोंमें वेदने तो बडी ही उत्तम सावधानीकी सूचना दी है। इतिहासमें बहुत वार देखा गया है कि सत्यकी सुरक्षा करनेवालोंके प्रयत्नसे कभी कभी युद्ध छिड जाते हैं और सुकृत करनेवालोंके

उत्तम पुण्यकर्म भी अशान्ति फैलानेवाले होते हैं। इसलिये सत्यके पक्षपातियोंको और सुकृत करनेवालोंको भी अपने कर्मोंका परिणाम कैसा हो रहा है यह देखना चाहिये। नहीं तो ये ही सुकृत और किसी जातिका नाश करनेवाले बनेंगे और शान्तिके स्थानपर विद्वेष और अशान्ति फैलेगी।

अथर्ववेदमें कहा है—

शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम्।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ॥२॥
इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता।
ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ॥ ३ ॥
इदं यत्परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितं। येनैव० ॥४॥
इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि। यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥ ५ ॥ अथर्व १९।९

'हमारा किया हुआ कर्म और न किया हुआ परंतु नियोजित किया कर्म यह सब शान्ति करनेवाला हो। परमेष्ठिनी वाग्देवी-वाणी है, इससे घोर परिणाम होते हैं, इसीसे शान्ति स्थापन हो। यह मन है जिसमें ज्ञानकी शक्ति है। इस मनसे घोर परिणाम भी होते हैं यह मन शान्ति स्थापन करनेवाला बने। ये पाँच इंद्रिय हैं, मन जिनमें छठा है, ये ज्ञानसे तीक्ष्ण बनते हैं। इनसे घोर परिणाम होता है। ये ही शान्ति स्थापन करनेवाले बनें।'

ये मन्त्र बडे अच्छे उपदेश कर रहे हैं और शान्ति स्थापनके कार्यमें योग्य संमति दे रहे हैं। मनुष्यके पास वाणी, मन, पञ्चज्ञानेंद्रिय और पञ्चकर्मेन्द्रिय होते हैं। ये अशान्ति भी फैलाते हैं और शान्ति भी फैलाते हैं। उदाहरणार्थ देखिये कि हमारी वाणी है और उसीका रूप हमारी लेखन कला है। वाणी ही लेखमें लिखी जाती है। यह वक्ताकी वाणी तथा लेखकके लेख जनताको भडकाते भी हैं और भडके हुए लोगोंको शान्त भी करते हैं। ऐसे ही मन, इंद्रियां और मनुष्यकी कृतियां हैं। ये अच्छा भी करते हैं और बुरा भी करते हैं। इसीलिये मन्त्रमें कहा है।

येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः।

'जिससे घोर परिणाम होता है, उसीसे हमारे अन्दर शान्ति स्थापन हो।' यह कितनी उत्तम सूचना है यह मनन करनेवाले पाठक जान सकते हैं। एक एक इंद्रियके विषयमें यह सत्य है। उदाहरणके लिये मनुष्यका प्रजननका इंद्रिय ही देखिये। वंश सुधार करनेके लिये ही यह है। पर इसने कितने घोर परिणाम समाजमें किये हैं देखिये। सब इतिहासमें हुए क्रूर कृत्य इसके कारण हैं। कितने खून, कितनी खराबी और कितनी कतलें इस इंद्रियके घोर परिणामके कारण हुई हैं। पर वास्तवमें यदि यह इंद्रिय अपनी मर्यादामें रहेगा तो जगतमें सुप्रजा उत्पन्न होकर कितना कल्याण होगा, इसका ज्ञान विचार करनेसे विदित हो सकता है। पूर्व स्थानमें 'द्यौः शान्ति' यह यजुर्वेदका मन्त्र दिया है। वैसा ही मंत्र थोडे हेरफेरसे अथर्ववेदमें आया है वह अब देखिये—

पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः। ताभिः शान्तिभिः सर्वशान्तिभिः शमयामोऽहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः ॥ अथ० १९।९।१४

'पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोकोंमें शान्ति रहे, जल, औषधि और वनस्पति शान्ति बढानेवाली हों, सब देव शान्ति स्थापन करें, शांतिसे सची शांति स्थापन हो। इन शांतिके उपायोंसे सब अशान्ति, घोर, क्रूर और पाप हो वह सब दूर होकर सर्वत्र शुभ ही शुभ हो, सर्वत्र आनन्दमयी शान्ति स्थापन हो जाय।' यह मंत्र पूर्वस्थानमें दिये मंत्र जैसा ही है, पर इसमें थोडे शब्दोंमें परिवर्तन है। पाठक पूर्वोक्त यजुर्वेदके मन्त्रसे इस अथर्ववेदके मंत्रकी तुलना करें और मननपूर्वक बोध प्राप्त करें।

विश्वशान्तिके लिये वेदने जो अनेक आदेश दिये हैं वे ये हैं। इनका मनन करनेसे पता लग सकता है कि यह प्रत्येक व्यक्तिके लिये और प्रत्येक राष्ट्रशासकके लिये यहां भरपूर कार्यक्रम दिया है। व्यक्तिकी उन्नति होनी चाहिये। इस कार्यके लिये योगसाधन, उपासना, वेदाध्ययन, सद्ग्रन्थोंका अध्ययन, सज्जनोंकी संगति आदि साधन हैं। व्यक्तिकी उन्नतिमें बाधा न हो और सामाजिक तथा राष्ट्रीय उन्नतिका साधन होजाय, इसलिये स्वराज्य तथा सुराज्य शासन

की सहायता आवश्यक है। इसीसे राष्ट्रमें तथा राष्ट्रके बाहर शान्ति स्थापन हो सकती है और सब लोग आनन्दमें रह सकते हैं। भयसे मुक्त होकर सुखका अनुभव कर सकते हैं।

सबका कार्य

यह शान्ति स्थापनका कार्यक्रम पृथ्वीके ऊपरके संपूर्ण राष्ट्रोंके लिये है। आज हम एक एक व्यक्ति 'ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः' ऐसा बोलते हैं और कई बडी घोषणा भी करते हैं। पर घोषणा करनेवाले यदि अपनी दिनचर्या देखेंगे, तो उनको स्वयं पता लगेगा कि, वे दिनके एक क्षणमें भी शान्तिस्थापनके वेदद्वारा उक्त कार्यक्रमको तत्परतासे करते नहीं हैं। अनुष्ठान न करनेपर सिद्धि किस तरह प्राप्त हो सकती है? साधारण खान पान भी योग्य अनुष्ठानके विना सिद्ध नहीं हो सकता, फिर वैयक्तिक-राष्ट्रीय-जागतिक शान्ति विना अनुष्ठानके किस तरह सिद्ध हो सकेगी? और यदि अनुष्ठान न करनेसे जगत्में शान्ति नहीं हुई, और सर्वत्र अशान्ति और अस्वस्थता, अथवा संघर्ष, स्पर्धा और युद्ध होने लगे, तो हमारे त्रिवार शान्तिका घोष करनेका क्या प्रयोजन होगा? वैदिक धर्मका एक एक वचन विशेष अनुष्ठानका सूचक है। वेद मंत्रका प्रत्येक पद, वचन और मंत्र एक एक अनुष्ठान बताता है। वह अनुष्ठान मनुष्यको करना चाहिये। मनुष्यपर उस अनुष्ठानको यथायोग्य रीतिसे करनेका बडा भार है। मनुष्यका नाम 'क्रतु' है। यह एकसो पचीस वर्ष जीवित रहकर सौ वर्ष सौ क्रतु करके यह 'शतक्रतु' बननेवाला है। इसका यह 'क्रतु' नाम इसका जन्म ही अनुष्ठान करनेके लिये है यह बता रहा है। यदि इसका जन्म ही अनुष्ठानके लिये है, तब तो इसको अपना जीवन यज्ञानुष्ठानमें ही लगाना चाहिये।

वेदका कोई शब्द लीजिये, वचन लीजिये किंवा मन्त्र अथवा सूक्त लीजिये, मनुष्यके सन्मुख उन्नतिका परिपूर्ण कार्यक्रम वह रखता है। जो इस अनुष्ठानको करते हैं, वे कृतकृत्य होते हैं। उनका जीवन सफल होता है। जो अनुष्ठान करनेमें दत्तचित्त नहीं रहते, वे असफल होते हैं, और पश्चात्तापसे त्रस्त होते हैं।

अनुष्ठानसे तारण

वैदिक धर्म केवल विश्वाससे तारण नहीं मानता, अनुष्ठानसे ही तारण होनेवाला है। इस निबंधका विषय 'शान्तिः शान्तिः शान्तिः' है, ये तीन पद इस जगतके व्यवहारमें शान्ति स्थापन करनेके लिये अनुष्ठान बता रहे हैं।

यह कोई अभौतिक सुखके लिये अनुष्ठान नहीं है। मरणोत्तर कुछ अवस्था विशेष प्राप्त करनेके लिये यह अनुष्ठान नहीं है। यहां इस जगत्में जीतेजी अनुभवमें आनेवाले शान्ति समाधानके लिये प्रसन्नतापूर्वक आनन्द प्रसन्नताकी प्राप्तिके लिये यह अनुष्ठान है। इस जीवनमें यह आनन्द मनुष्यको लेना है, इसीलिये यह अनुष्ठान है।

यदि इस जगत्के मनुष्य 'शान्ति' के त्रिवार उच्चारण करनेसे जो अनुष्ठान सूचित होता है, उस अनुष्ठानको करेंगे और उससे व्यक्तिमें, राष्ट्रमें और जगत्में शान्ति स्थापन करनेमें सफल हो जायगे, तो उनको जो आनन्द, जो समाधान और जो शांतिका लाभ होगा वह यहां जीतेजी होगा।

सर्वत्र आरोग्य, निर्भयता, नीरोगिता, विपुलता, सुख, क्षेम, शान्ति, प्रसन्नताका आनंद मिलेगा। यही प्राप्त करनेके लिये ही मनुष्यने जन्म लिया है। जो प्रयत्न करेंगे वे सफल होंगे।

ओंकारका महत्त्व

त्रिवार 'शांति' के पूर्व 'ओं' कार बोला जाता है। इसका थोडासा मनन करना चाहिये। (अवति इति ओं) संरक्षण करता है वह ओं है। ओंका अर्थ संरक्षण है। 'अव्' धातुका अर्थ 'रक्षण, प्रगति, कांति, प्रीति, तृप्ति, ज्ञान, प्रवेश, श्रवण, स्वामी होना, याचना, क्रिया, इच्छा, प्रकाशना, प्राप्ति, आलिंगन, दान, स्वीकार, होना, बढना' आदि हैं। मनुष्य मात्रके जीवनमें ये व्यवहार होते ही हैं। ये व्यवहार करते हुए तीनों शान्तियोंकी स्थापना हो ऐसा प्रयत्न करना चाहिये। इस एक एक अर्थका मनन करके अधिक बोध प्राप्त करनेके लिये इस लेखमें अपने पास समय नहीं है। ओंकारके अर्थोंकी व्याप्ति इतनी विशाल है। ओंकारसे बोधित होनेवाले इतने व्यवहारोंसे शान्ति

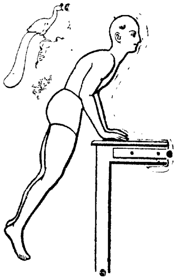
स्थापन होनी चाहिये। और इसके विपरीत परिस्थिति निर्माण नहीं होनी चाहिये। इतनी दक्षता धारण करनेकी सूचना यहां इस ओंकारसे मिलती है।

ओंकारमें 'अ-उ-म' ये तीन अक्षर हैं। जाग्रति-स्वप्न--सुषुप्तिका बोध इनसे होता है। यह भाव माण्डूक्य उपनिषदमें कहा है। अर्थात् जाग्रति स्वप्न सुषुप्तिमें उत्तम शान्तिका अनुभव प्राप्त होना चाहिये। यह इसका तात्पर्य है।

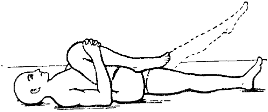
'अ'कारसे 'आदि अथवा प्रथम' होना, 'उ' कारसे उत्तम होना और 'म'कारसे मान्य होना यह भाव भी उक्त उपनिषदमें दिया है। उत्तम परिपूर्ण उन्नत होनेका भाव अ--उ--म के अर्थमें है। यह भाव 'ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः' के साथ जोडकर देखिये। इसका विचार पाठक करें और ऐसी उत्तम प्रसन्नताकी शान्ति प्राप्त करें और आदर्श जीवन व्यतीत करें।

ॐ शांति शांति· शांतिः।

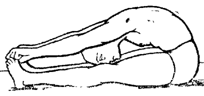
व्यक्तिमें शान्ति हो, राष्ट्रमें शान्ति हो, जगतमें शान्ति हो।



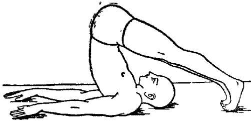
मयूरासन।



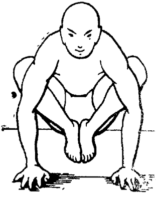
पवनमुक्तासन।



पश्चिमोत्तानासन।



हलासन।



बकासन।

प्रश्न

१ शांतिका तीन वार उच्चारण क्यों किया जाता है ?

२ तीन प्रकारके कष्ट कौनसे हैं ?

३ तीन प्रकारके कष्टोंसे मनुष्य किस तरह बच सकता है ?

४ जागतिक शान्तिकी सिद्धिके लिये कौन यत्न कर सकता है ?

५ राष्ट्रीय शान्तिकी स्थापना कौन कर सकता है ?

६ वैयक्तिक शान्ति किस तरह सिद्ध हो सकती है ?

७ योगसाधन किस देशमें हो सकता है ?

८ योगसाधन करनेके लिये अनुकूल परिस्थिति कौनसी है ? वह किस प्रकारके राज्यमें हो सकती है ?

९ विश्वशान्ति कैसी होगी ? कौन करेगा ? उसके साधन कौनसे हैं ?

१० क्या बलके विना शान्ति स्थापन करनेका कार्य हो सकता है ? कौनसे बल चाहिये जिससे शान्ति स्थापन हो सकती है ?

११ वैदिक धर्म व्यक्तिगत धर्म है वा सामुदायिक अथवा दोनों प्रकारका ?

१२ व्यक्तिमें शान्तिके लिये जो योगसाधन आवश्यक है उसका वर्णन करो ।

१३ आयुर्वेदसे कौनसे लाभ होते हैं और कौनसी शान्ति स्थापन हो सकती है ?

१४ मनकी स्वस्थता और शान्तिके लिये कौनसा उपाय करना उचित है ?

१५ राष्ट्रीय शान्ति कौन स्थापन कर सकता है और किस रीतिसे उसकी स्थापना हो सकती है ? इन उपायोंका वर्णन करो ।

१६ ईश्वरके त्रिविध कार्य कौनसे हैं जो राष्ट्रोन्नतिमें साधक होते हैं ?

१७ किस समय द्विजातियोंको शस्त्र धारण करना योग्य है ?

१८ क्या शासक शक्तिकी सहायताके विना कोई शान्ति स्थापन हो सकती है ? हो सकती है तो किस तरह और न हो सकती हो तो क्यों ?

१९ विश्व शान्तिकी कौनसी कठिनता है ?

२० जलसे कहां शान्ति स्थापन होती है ?

२१ ज्ञानसे कहां शान्ति स्थापन होगी ?

२२ क्या सब प्रकारकी शान्ति हितकारिणी है ?

२३ बुद्धि और धनसे कैसी शान्ति हो सकेगी ?

२३ शान्ति स्थापन करनेकी इच्छा करनेवाले किस तरह व्यवहार करें ?

२५ ओंकारका अर्थ क्या है ?

२६ तीनों शान्तियोंका परस्पर संबंध कौनसा है ?

२७ अ उ म् से किसका बोध होता है ?

२८ त्रिलोकीमें पदार्थोंका मानवी उन्नतिके साथ कौनसा संबंध है ?

२९ पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोकमें कौन कौनसे पदार्थ हैं कि जो मानवके लिये अत्यंत आवश्यक हैं ? जिनके विना जीवन नहीं चल सकता ऐसे पदार्थ कौनसे हैं ?

३० बाह्य विश्व और मानव शरीरका परस्पर संबंध क्या है ? वह संबंध बताओ ।

१०।४१।२– (सुहस्त्यो घौषेय. । अश्विनौ)

प्रातर्युजं नासत्याधि तिष्ठथ प्रातर्यावाणं मधुवाहनं रथम्।
विशो येन गच्छथो यज्वरीर्नरा कीरेश्चिद्यज्ञं होतृमन्तमश्विना ॥

७।६९।६– (अश्विनौ)

मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः ।

४।४४।५– (पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ । अश्विनौ)

मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः ।

७।६९।८=७।६७।१०–(अश्विनौ) = (अश्विनौ)

७।७०।५– (अश्विनौ)

प्रति प्र यातं वरमा जनाय ।

७।५५।४– (मित्रावरुणौ)

प्रति वामत्र वरमा जनाय ।

७।७०।७– (अश्विनौ)

इय मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम्। इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

७।७१।६– (तथैव समानः) (अश्विनौ)

७।७३।३– (अश्विनौ)

अहेम यज्ञं पथामुराणा **इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम्।**
श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामबोधि प्रति स्तोमैर्जरमाणो वसिष्ठ ॥

७।७१।५– (अश्विनौ)

नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।

१।११७।९– (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिज. । अश्विनौ)

नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।

७।७१।६ = ७।७०।७ (अश्विनौ) = (अश्विनौ)

७।७१।६– (अश्विनौ)

इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।

७।७०।७ (अश्विनौ)

इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।

७।७३।३– (अश्विनौ)

इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।

७।७२।४– (अश्विनौ)

प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरन्ते ।

६।६७।१०– (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । मित्रावरुणौ)

वि यद् वाचं कीस्तासो **भरन्ते ।**

७।७२।४– (अश्विनौ)

ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद् ।

४।६।२– (वामदेवो गौतमः । अग्निः)

ऊर्ध्वं भानुं सवितेवाश्रेत् ।

४।१४।२– (वामदेवो गौतमः । अग्निः)

ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अश्रेत् ।

४।१३।२– (वामदेवो गौतमः । अग्निः)

ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेत् ।

७।७२।५– (अश्विनौ)

आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात्। आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

७।७३।५– (अश्विनौ)

(तथैव समानः)

७।७३।१– (अश्विनौ)

अतारिष्म तमसस्पारमस्य ।

१।१८३।६– (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ)

अतारिष्म तमसस्पारमस्य ।

१।१८४।६– (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ)

अतारिष्म तमसस्पारमस्य ।

७।७३।३– (अश्विनौ)

इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।

७।७०।७– (अश्विनौ)

इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।

७।७१।६– (अश्विनौ)

इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।

७।७३।४– (अश्विनौ)

उप त्या वह्नी गमतो विशं नो रक्षोहणा संभृता वीळुपाणी।
समन्धांस्यग्मत मत्सराणि **मा नो मर्धिष्टमा गत** शिवेन ॥

७।७४।३– (अश्विनौ)

आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना ।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू **मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥**

७।७३।५ = ७।७२।५ (अश्विनौ) = (अश्विनौ)

७।७४।२- (अश्विनौ)
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं ।
१।९२।१६- (गोतमो राहूगणः । अश्विनौ)
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छत ।
८।३५।२२— (श्यावाश्व आत्रेय. । अश्विनौ)
अर्वाग् रथं नि यच्छतं ।
७।७४।२- (अश्विनौ)
पिबतं सोम्यं मधु ।
६।६०।१५- (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । इन्द्राग्नी)
पिबतं सोम्यं मधु ।
८।५।११- (ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ)
पिबतं सोम्यं मधु ।
८।८।१- (सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ)
पिबतं सोम्यं मधु ।
९।३५।७२— (श्यावाश्व आत्रेयः । अश्विनौ)
पिबतं सोम्यं मधु ।
८।२४।१३— (विश्वमना वैयश्वः । इन्द्रः)
पिबाति सोम्यं मधु ।
७।७४।३— (अश्विनौ)
मा नो मर्धिष्टमा गतं ।
७।७३।४— (अश्विनौ)
मा नो मर्धिष्टमा गतं शिवेन ।
७।७५।६— (उषस)
दधाति रत्नं विधते जनाय ।
४।४४।४— (पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ । अश्विनौ)
दधथो रत्नं विधते जनाय ।
७।७५।७— (उषसः)
देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः ।
४।५६।२— (वामदेवो गोतमः । द्यावापृथिवी)
देवी देवेभिर्यजते यजत्रैः ।
१०।११।८— (आंगिर्हविर्धानिः । अग्निः)
देवी देवेषु यजता यजत्र ।
७।७६।५— (उषसः)
ते देवानां **न मिनन्ति व्रतानि ।**
७।४७।३— (आपः)
ता इन्द्रस्य **न मिनन्ति व्रतानि ।**
७।७६।६— (उषसः)
उषः सुजाते प्रथमा जरस्व ।
१।११३।५— (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । उषाः)
उषः सूनृते प्रथमा जरस्व ।
७।७७।४— (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः ।
अन्तिवामा दूरे अमित्रमुच्छो**र्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः** । यावय द्वेष भरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि ॥
९।७८।५— (कविर्भार्गवः । पवमानः सोमः)
एतानि सोम पवमानो अस्मयुः सत्यानि कृण्वन् द्रविणान्यर्षसि ।
जहि शत्रुमन्तिके दूरके च य **उर्वीं गव्यूतिमभयं च नस्कृधि** ॥
७।७८।३— (उषसः)
एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन् पुरस्तात् ।
१।१९१।५— (अगस्त्यो मैत्रावरुणि । अप्तृणसूर्याः)
एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन् ।
७।७८।३— (उषसः)
एताः उत्या प्रत्यदृश्रन् पुरस्ताज्ज्योतिर्यच्छन्तीरुषसो विभातिः । **अजीजनन् त्सूर्यं यज्ञमग्निमपाचीनं** तमो अगादजुष्टम् ॥
७।८०।२— (उषसः)
एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि ।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा **प्राचिकितत् सूर्यं यज्ञमग्निम्** ॥
७।८०।३= ७।४१।७ (उषसः)= (अग्नीन्द्रमित्रावरुणाः)
७।८१।१— (उषस.)
प्रत्यु अदर्श्यायती ।
८।१०१।१३— (जमदग्निर्भार्गवः । प्रगाथः)
चित्रेव **प्रत्यदर्श्यायती ।**
७।८१।१— (उषसः)
ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।
१।४८।८— (प्रस्कण्वः काण्वः । उषाः)
ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।
७।८१।६— (इन्द्रावरुणौ)
श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः ।
चोदयित्री मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छदप स्रिधः ॥

८।१३।१९— (नारदः काण्वः। इन्द्रः)
इन्द्र शविष्ठ सत्पते रयिं गृणत्सुधारय। श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनम्॥
५।८६।६— (भौमोऽत्रि । इन्द्राग्नी)
रयिं गृणत्सु दिधृतमिषं गृणत्सु दिधृतम्।
७।८१।६— (उषसः)
उषा उच्छदप स्रिधः।
१।४८।८— (प्रस्कण्वः काण्वः। उषाः)
उषा उच्छदप स्रिधः।
७।८२।१— (इन्द्रावरुणौ)
विशे जनाय महि शर्म यच्छतम्।
१।९३।८— (गोतमो राहूगणः। अग्नीषोमौ)
विशे जनाय महि शर्म यच्छतम्।
७।८२।७— (इन्द्रावरुणौ)
न तमंहो न दुरितानि मर्त्यम्।
२।२३।५— (गृत्समद भार्गवः शौनकः। बृहस्पतिः)
न तमंहो न दुरितं कुतश्चन।
७।८२।९— (इन्द्रावरुणौ)
नरस्तोकस्य तनयस्य सातिषु।
४।२४।३— (वामदेवो गौतमः। इन्द्रः)
नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ।
७।८२।१०— (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठ । इन्द्रावरुणौ)
अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः। अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे॥
७।८३।१०— (तथैव समानः) (इन्द्रावरुणौ)
७।८४।१— (इन्द्रावरुणौ)
हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः।
४।४२।९— (त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः। त्रसदस्युः)
हवेभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः।
१।१५३।१— (दीर्घतमा औचथ्यः। मित्रावरुणौ)
हवेभिर्मित्रावरुणा नमोभिः।
७।८४।१- (इन्द्रावरुणौ)
परि त्मना विषुरूपा जिगाति।
५।१५।४- (धरुण आंगिरसः। अग्निः)
परि त्मना विषुरूपो जिगासि।

७।८४।२- (इन्द्रावरुणौ)
परि नो हेळो वरुणस्य वृज्याः।
२।३३।१४- (गृत्समद आंगिरसः शौनहोत्रः पश्चाद् भार्गवः शौनकः। रुद्रः)
परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः।
६।२८।७- (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। गावः)
परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः।
७।८४।३- (इन्द्रावरुणौ)
प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेम।
७।५८।३- (मरुतः)
प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेत।
७।८४।४- (इन्द्रावरुणौ)
रयिं धत्तं वसुमन्तं पुरुक्षुम्।
४।३४।१०- (वामदेवो गौतमः। ऋभवः)
रयिं धत्थ वसुमन्तं पुरुक्षुम्।
६।६८।७- (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। इन्द्रावरुणौ)
रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुक्षुम्।
१।१५९।५- (दीर्घतमा औचथ्यः। द्यावापृथिवी)
रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम्।
४।४९।४- (वामदेवो गौतमः। इन्द्राबृहस्पती)
रयिं धत्तं शतग्विनम्।
७।८४।५- (इन्द्रावरुणौ)
इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत् तोके तनये तूतुजाना। सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥
७।८५।५- (तथैव समानः) (इन्द्रावरुणौ)
७।८४।५- (इन्द्रावरुणौ)
प्रावत् तोके तनये तूतुजानाः। सुरत्नासो देववीतिं गमेम।
७।८५।५- (समानः) (इन्द्रावरुणौ)
७।६७।६- (अश्विनौ)
आ वां तोके तनये तूतुजानाः। सुरत्नासो देववीतिं गमेम।
७।८६।१- (वरुणः)
धीरा त्वस्य महिना जनूंषि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी। प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम॥

९।१०१।१५- (वैश्वामित्रो वाच्यो वा प्रजापतिः । पवमानः सोमः)
स वीरो दक्षसाधनो **वि यस्तस्तम्भ रोदसी ।**
हरिः पवित्रे अव्यत वेधान योनिमासदम् ॥

७।८७।३- (वरुण.)
प्रचेतसो य **इषयन्त मन्म ।**
१।७७।४- (गोतमो राहूगणः । अग्निः)
वाजप्रसूता **इषयन्त मन्म ।**

७।८९।१- (वरुणः)
मृळा सुक्षत्र मृळय ।
७।८९।४- (वरुणः)
मृळा सुक्षत्र मृळय ।

७।८९।५- (वरुणः)
यत् किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽ**भिद्रोहं मनुष्या३श्चरामसि** । अचित्ती यत् तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥
१०।१६४।४- (प्रचेता आंगिरसः । दुःस्वप्ननाशनम्)
यदिन्द्र ब्रह्मस्पतेऽ**भिद्रोहं चरामसि ।**
प्रचेता न आंगिरसो द्विषता पात्वंहसः ॥

७।९०।१- (वायुः)
वह वायो नियुतो याह्यच्छा ।
१।१३५।२- (परुच्छेपो दैवोदासिः । वायुः)
वह वायो नियुतो याह्यस्मयुः ।

७।९०।१- (वायुः)
पिबा सुतस्यान्धसो मदाय।
५।५१।५- (स्वस्त्यात्रेयः । इन्द्रवायू)
पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः ।

७।९०।४- (वायुः)
गव्यं चिदूर्व**मुशिजो वि वव्रुः ।**
४।१।१५- (वामदेवो गौतमः । अग्नीवरुणौ)
व्रजं गोमन्त**मुशिजो वि वव्रुः ।**

७।९०।६- (वायुः ।)
ईशानासो ये दधते स्वर्णो **गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्हिर**ण्यैः । इन्द्रवायू सूरयो विश्वमायुरर्वद्भिर्वीरैः पृतनासु सह्युः ॥
१०।१०८।७- (पणयोऽसुराः । सरमा देवता)
अयं निधिः सरमे अद्रिबुध्नो **गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्न्यृष्टः ।**
रक्षन्ति तं पणयो ये सुगोपा रेकु पदमलकमा जगन्थ ॥

७।९०।७- (वायुः)
अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रावायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः । वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

७।९१।७- (इन्द्रवायू)
(तथैव समानः)

७।९१।३ (वायुः)
विश्वम्भरः स्वपत्यानि चक्रुः ।
४।३४।९- (वामदेवो गौतमः)
विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः ।

७।९१।४— (इन्द्रवायू)
यावत् तरस्तन्वो३ यावदोजो ।
१।३३।१२— (हिरण्यस्तूप आंगिरसः । इन्द्रः)
यावत्तरो मघवन् **यावदोजो ।**

७।९१।७ = ७।९०।७ (इन्द्रवायू) = (इन्द्रवायू)

७।९२।५— (वायुः)
आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।
१।१३५।३— (परुच्छेपो दैवोदासिः । वायुः)
आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि वितये ।

७।९२।५ — (वायुः)
वायो **अस्मिन् त्सवने मादयस्व ।**
२।१८।७— (गृत्समद आंगिरसः शौनहोत्रः पश्चाद् भार्गवः शौनकः । इन्द्रः)
अस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ।
७।२३।५— (इन्द्रः)
अस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ।
७।२९।२— (इन्द्रः)
अस्मिन्नू षु सवने मादयस्व ।

७।९३।१— (इन्द्राग्नी)
ता सानसी शवसाना **हि भूतं ।**
६।६८।२— (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । इन्द्रावरुणौ)
शूराणां शविष्ठा **ता हि भूतं**

७।९३।६— (इन्द्राग्नी)
एन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ।

१।१०८।४— (कुत्स आंगिरसः । इन्द्राग्नी)
पन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ।
७।९३।७— (इन्द्राग्नी)
यत् सीमागश्चकृमा तत् सुमृळ ।
१।१७९।५— (अगस्त्यशिष्यो ब्रह्मचारी । रति ।
यत् सीमागश्चकृमा तत् सु मृळतु ।
७।९३।८- (इन्द्राग्नी)
मेन्द्रो नो विष्णुर्**मरुतः परिख्यन् ।**
१।१६२।१- (दीर्घतमा औचथ्यः । अश्वः)
मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा **मरुतः परिख्यन् ।**
७।९४।२— (इन्द्राग्नी)
इशाना पिप्यतं धियः ।
५।७१।२- (बाहुवृक्त आत्रेय । मित्रावरुणौ)
इशाना पिप्यतं धियः ।
९।१९।२- (काश्यपोऽसितो देवलो वा । पवमानः सोमः)
इंशाना पिप्यत धियः ।
७।९४।३- (इन्द्राग्नी)
मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये । **मा नो रीरधतं निदे ।**
८।८।१३- (सध्वंस काण्वः । अश्विनौ)
आ नो विश्वान्यश्विना धत्तं राधास्यह्रया । कृतं न ऋत्वियावतो **मा नो रीरधतं निदे ॥**
७।९४।५- (इन्द्राग्नी)
ता हि शश्वन्त ईळते ।
५।१४।३- (सुतंभर आत्रेयः । अग्निः)
तं हि शश्वन्त ईळते ।
७।९४।५- (इन्द्राग्नी)
ता हि शश्वन्त ईळत इत्था विप्रास ऊतये । **सबाधो वाजसातये ॥**
८।७४।११- (गोपवन आत्रेयः । अग्निः)
यं त्वा जनास **ईळते सबाधो वाजसातये** । स बोधी वृत्रतूर्ये ॥
७।९४।६- (इन्द्राग्नी)
प्रयस्वन्तो हवामहे ।
५।१०।३- (प्रयस्वन्त आत्रेयाः । अग्निः)
प्रयस्वन्तो हवामहे ।
८।६५।६- (प्रगाथः काण्वः । इन्द्र.)
प्रयस्वन्तो हवामहे ।

७।९४।७- (इन्द्राग्नी)
अस्मभ्यं चर्षणीसहा ।
५।३५।१- (प्रभूवसुराङ्गिरसः । इन्द्र)
अस्मभ्यं चर्षणीसहं ।
७।९४।७- (इन्द्राग्नी)
मा नो दुःशंस ईशत ।
१।२३।९- (मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रो मरुत्वान् ।
मा नो दुःशंस ईशत ।
२।२३।१०— गृत्समद आंगिरस शौनहोत्र. पश्चाद् भार्गव. शौनकः । बृहस्पतिः ॥
मा नो दुःशंसो अभिदिप्सुरीशत ।
१०।२५।७- (ऐन्द्रो विमदः, प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा । सोम)
मा नो दुःशंस ईशता विवक्षसे ।
७।९४।८- (इन्द्राग्नी)
धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य ।
१।१८।३- मेधातिथि काण्वः । ब्रह्मणस्पतिः)
धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य ।
७।९४।८- (इन्द्राग्नी)
इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ।
१।२१।६- (मेधातिथिः काण्व. । इन्द्राग्नी)
इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ।
७।९५।४- (सरस्वती)
उत स्या न सरस्वती जुषाण ।
६।६१।७- (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । सरस्वती)
उत स्या नः सरस्वती ।
७।९६।२- (सरस्वती)
चोद राधो मघोनाम् ।
१।४८।२— (प्रस्कण्वः काण्वः । उषा)
चोद राधो मघोनाम् ।
७।९६।३— (सरस्वती)
गृणाना जमदग्निवत् ।
३।६२।१८— (गाथिनो विश्वामित्रः । मित्रावरुणौ)
गृणाना जमदग्निना ।
८।१०१।८— (जमदग्निर्भार्गवः । अश्विनौ)
गृणाना जमदग्निना ।
९।६२।२४— (जमदग्निर्भार्गवः । पवमान सोमः)
गृणानो जमदग्निना ।

९।६५।२५- (भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा। पवमानः सोमः)
गृणानो जमदग्निना ।

७।९६।५— (सरस्वती)
तेभिर्नोऽविता भव ।

१।९१।९— (गोतमो राहूगणः । सोमः)
ताभिर्नोऽविता भव ।

१।८१।८— (गोतमो राहूगणः । इन्द्रः)
अथा **नोऽविता भव ।**

७।९६।६— (सरस्वती, सरस्वान्)
पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः ।
भक्षीमहि प्रजामिषम् ।

९।८।९— (काश्यपोऽसितो देवलो वा । पवमानः सोमः)
नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम् ।
भक्षीमहि प्रजामिषम् ।

७।९७।१— (इन्द्रः)
नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।

१।१५४।५— (दीर्घतमा औचथ्यः । विष्णुः)
नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।

७।९७।९— (इन्द्राब्रह्मणस्पती)
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीः ।

४।५०।११— (वामदेवो गौतमः । बृहस्पतिः इन्द्रः)
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीः ।

७।६४।५— (मित्रावरुणौ)
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीः ।

७।६५।५— (मित्रावरुणौ)
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीः ।

७।९७।९— (इन्द्राब्रह्मणस्पती)
जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ।

४।५०।११— (वामदेवो गौतमः । इन्द्राबृहस्पती)
जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ।

७।९७।१०— (इन्द्राबृहस्पती)
बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य । धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

७।९८।१०— **(तथैव समानः)**

७।९७।१०- (इन्द्राबृहस्पती)
धत्तं रयिं **स्तुवते कीरये चिद् ।**

६।२३।३- (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । इन्द्रः)
दाता वसु **स्तुवते कीरये चिद् ।**

७।९८।१— (इन्द्रः)
जुहोतन **वृषभाय क्षितीनाम् ।**

१०।१८७।१- (आग्नेयो वत्सः । अग्निः)
वृषभाय क्षितीनाम् ।

७।९८।३- (इन्द्रः)
युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ।

१।५९।५- (नोधा गौतमः । अग्निर्वैश्वानरः)
युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ।

७।९८।५— (इन्द्रः)
प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि **प्र नूतना मघवा या चकार ।**

५।३१।६— (अवस्युरात्रेयः । इन्द्रः)
प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं **प्र नूतना मघवन् या चकर्थ ।**

७।९८।१० = ७।९७।१० (इन्द्राबृहस्पती) = (इन्द्राबृहस्पती)

७।९९।४- (इन्द्राविष्णू)
उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ।

१।९३।६ — (गोतमो राहूगणः । अग्नीषोमौ)
उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ।

७।९९।७— (विष्णुः)
वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् । वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

७।१००।७— (विष्णुः)
(तथैव समानः)

७।१००।७=७।९९।७ (विष्णुः)=(विष्णुः)

७।१०१।१ (पर्जन्यः)
तिस्रो वाचः प्र वद **ज्योतिरग्राः ।**

७।३३।७— (वसिष्ठपुत्राः, इन्द्रो वा)
तिस्रः प्रजा आर्या **ज्योतिरग्राः ।**

७।१०१।३— (पर्जन्यः)
यथावशं तन्वं चक्र एषः ।

३।४८।४— (गाथिनो विश्वामित्रः । इन्द्रः)
यथावशं तन्वं चक्र एषः ।

७।१०१।४—(मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः, कुमार आग्नेयो वा । पर्जन्यः)
यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुस्तिस्रो द्यावस्त्रेधा सस्रुरापः । त्रयः कोशास उपसेचनासो **मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥**

७।१०१।६– (पर्जन्यः)

स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम् ।

३।५६।३– (प्रजापति वैश्वामित्रः,प्रजापतिर्वाच्यो वा विश्वेदेवाः)

स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम् ।

७।१०१।६ — (पर्जन्यः)

तस्मिन्नात्मा **जगतस्तस्थुषश्च ।**

१।११५।१— (कुत्स आंगिरसः । सूर्यः)

सूर्य **आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।**

७।१०३।१०— (मण्डूकाः [पर्जन्यः])

सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ।

३।५३।७— (गाथिनो विश्वामित्रः । इन्द्रः)

सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ।

७।१०४।१— (इन्द्रासोमौ)

इन्द्रासोमा तपतं **रक्ष उब्जतं ।**

१।२१।५— (मेधातिथिः काण्वः । इन्द्राग्नी)

इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम् ।

७।१०४।३— (इन्द्रासोमौ)

अनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम् ।

१।१८२।६— (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ)

अनारम्भणे तमसि प्रविद्धम् ।

७।१०४।७— (इन्द्रासोमौ)

हतं द्रुहो **रक्षसो भंगुरावतः ।**

१०।७६।४— (सर्प ऐरावतो जरत्कर्णः । ग्रावाण)

अप **हत रक्षसो भंगुरावत ।**

७।१०४।७— (इन्द्रासोमौ)

इन्द्रासोमा **दुष्कृते** मा **सुगं भूत ।**

१०।८६।५— (इन्द्रः; ऐन्द्रो वृषाकपिः; इन्द्राणी । इन्द्रः)

न **सुगं दुष्कृते भुवम् ।**

७।१०४।१६— (इन्द्रासोमौ)

विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट ।

५।३२।७— (गातुरात्रेयः । इन्द्रः)

विश्वस्य जन्तोरधमं चकार ।

७।१०४।१९— (इन्द्रः)

प्र वर्तय दिवो अश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन् सं शिशाधि ।

प्राक्तादपाक्तादधरादुदक्तादभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥

१०।८७।२१— (पायुर्भारद्वाजः रक्षोहाग्निः)

पश्चात् पुरस्तादधरादुदक्तात् कविः काव्येन परि पाहि राजन् । सखे सखायमजरो जरिम्णेऽग्ने मर्ता अमर्त्यस्त्वं नः ॥

७।१०४।२०– (इन्द्रासोमौ)

नूनं सृजद**शनिं यातुमद्भ्यः ।**

७।१०४।२५– (इन्द्रासोमौ)

अशनिं यातुमद्भ्यः ।

७।१०४।२३— (पृथिव्यन्तरिक्षे)

मा नो रक्षो अभि नड्यातुमावतामपोच्छतु मिथुना या किमीदिना ।

पृथिवी नः पार्थिवात् पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात् पात्वस्मान् ॥

१०।५३।५— (देवा , सौचीकोऽग्निः । अग्निः, देवाः)

पञ्च जना मम होत्रं जुषन्ता **गोजाता उत ये यज्ञियासः । पृथिवी नः पार्थिवात् पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात् पात्वस्मान् ॥**

७।३५।१४ (विश्वेदेवाः)

गोजाता उत ये यज्ञियासः ।

७।१०४।२४— (इन्द्रासोमौ)

मा ते दृशन् **त्सूर्यमुच्चरन्तम् ।**

४।२५।४— (वामदेवो गौतमः । इन्द्र)

ज्योक् पश्यात् **सूर्यमुच्चरन्तम् ।**

६।५२।५— (ऋजिश्वा भारद्वाज । विश्वेदेवाः)

पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।

१०।५९।४– (बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः । निर्ऋतिः सोमश्च)

पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।

१०।५९।६—

ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तम् ।

धन्यवादाः

एते पुनरुक्ता मन्त्रा **श्री. मॉरिस ब्लूमफील्ड**रचितात् **' ऋग्वेद पुनरुक्तमंत्रा '** इत्यस्मात् ग्रन्थात् **हार्वर्ड विश्वविद्यालय** प्रकाशिताद्धन्यवादपूर्वमुद्धृताः ।

वैदिक वाक्योंकी रचना

हिंदीभाषामें ' **मनुष्योंके घर** ' ऐसे इसी क्रमसे शब्द रखकर वाक्य बनते हैं। पर अंग्रेजीमें तथा कई अन्य भाषाओंमें ' घर मनुष्योंके ' इस तरह वाक्य होते हैं और ' मनुष्योंके घर ' ऐसे भी होते हैं। वेदमंत्रोंमें दोनों प्रकारकी रचना दीखती है- ' मनुष्योंके घर ' इस तरहकी रचना निम्नलिखित मंत्रोंमें दीखता है।

३५ देवानां जनिमानि वेद। ४९ अस्य देवस्य संसदि। ७४ देवानां सख्यं जुषाणाः।

ऐसे महस्रो उदाहरण है अत उदाहरणार्थ इतने पर्याप्त हैं। अब ' घर मनुष्योंके ' इस ढंगकी वाक्यरचना निम्नलिखित मंत्रोंमें दीखता है—

४४ सूनो सहसः ७९, ८६ ५८ नेता सिन्धूनाम्। ५८ वृषभः तियानाम्। ६१ पतिं कृष्टीनाम्। ६१ रथ्यं रयीणाम्। ६१ केतुं अह्नाम्। ६७ र्श राज्यं रोदस्योः। ७३ दूतो अध्वरस्य। ८७ जार उषसां अबोधि। ८७ केतुं उभयस्य जन्तोः दधाति। ८८ विदुरः पणीनां। ९५ अरातिं मानुषाणां आयन्ति। १०१ ईशे बृहतोऽध्वरस्य। ११६ रयिर्वीरवतः १३८ होतारं अध्वरस्य। १६७ द्वे नप्तु देववतः शते गो। १८७ ईशानमस्य जगतः, ईशानं तस्थुषः। ३१७ राजा राष्ट्राणां, पेशः नदीनाम्। ३१९ रपः तनूनां। ७७० कामो रायः सुवीर्यस्य। ८०५ गर्भ ओषधीनाम्। ९३८ अयमस्तु धनपतिर्धनानां।

ये उदाहरण पर्याप्त हैं। ' राजा राष्ट्रोंका ' ऐसा वाक्य प्रयोग हिंदीमें नहीं होता। पर अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओंमें होता है, यह पद्धति वेदसे ही उन देशोंमें गयी ऐसा इन उदाहरणोंको देखकर कोई कह सकते हैं।

इसी तरह हिंदीमें ' पापसे बचाओ ' ऐसा कहते है। पर अंग्रेजी आदि भाषाओंमें ' बचाओ पापसे ' ऐसा कहते है। ऐसे वाक्य वेदमंत्रोंमें हैं। देखिये-

१३ पाहि नो रक्षसः। १३ पाहि धूर्तेरररुषः। ८४ वर्धस्व तन्वं। १२६ पाहि अंहसः। १०० यक्षि देवान्, १४१; १०० भवा नो दूतः। १०८ विन्द गातुं। १३१ यक्षि वेषि वार्यं। १३१ कृधि रत्नं यजमानाय। १३८ दधाति रत्नं विधते। १४१ यक्षत् देवान्। १७३ प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासं। १७७ त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैः। २०४ वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम्। २०५ श्रुधी हवं विपिपानस्य। २०५ बोधा विप्रस्य मनीषां। २०५ कृण्वा दुवांसि। ७१४ याहि...नो अच्छा। २१७ ददो वसूनि। २१७ ममद्ध्व सोमैः। २१९ वहन्तु त्वा हरयो मद्र्यञ्च। २२३ पताति दिद्यु न्नर्यस्य बाह्वोः। २२४ आ नो संभरणं वसूनां। २२५ जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य। २२७ कृधि सुहना वृत्रा। २७२ भवा वरूथं मघोनां। २७३ सुनोत सोममिन्द्राय। २७३ पचता पक्तीरवसे। २८० ये ददति प्रिया वसु। २८१ त्व पुष्यसि मध्यमं। २९० भवा वृधःसखीनाम्। ३१६ आचष्ट आसां पाथो नदीनाम्। ३७८ यच्छन्तु चन्द्रा उपम नो अर्कं। ३९५ यजस्व देवान्। ४४२ प्रतिजानीहि अस्मान्। ४४४ पाहि क्षेम...योगे न। ४७२ अपबाधध्वं वृषणस्तमांसि। ४७२ धत्त विश्वं तोकं तनयमस्मे। ४८३ ददात नो अमृतस्य प्रजायै। ४८३ जिगृत रायः सूनृता मघानि। ४४८ हन्ति वृत्रं। ५०५ अयुक्त सप्त हरितः सधस्थात्। ५१८ शंसा मित्रस्य वरुणस्य धाम। ५१८ अयन् मासा अयज्वनामवीराः। ५६४ अचेति केतुरुषसः पुरस्तात्। ५७२ धत्तं रत्नानि। जरतं च सूरीन्। ५८९ ६०८ अतारिष्म तमसस्पारमस्य। ६०९ अश्वीतं मध्वः। ५२८ अभूदु केतुरुषसः पुरस्तात्। ७०४ प्र शुन्ध्युध्वं वरुणाय प्रेष्ठां मतिं। ७६२ मरुत्सखा चोद रायो मघोनां। ७७६ धत्तं रयिं स्तुवते कीरये। ७८० योधया महतो मन्यमानान्। ७८५ उदस्थभ्ना नाकमृष्वं बृहन्तं। ७८५ दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः। ८४० जहि पुमांसं यातुधानं। ८४३ पिबतं घर्मं मधुमन्तं। ८४५ पिबतं सोमं मधुमन्तं। ९०९ जय अमित्रान्। जहि एषां वरं वरं मा अमीषां मोचि कश्चन।

इन वाक्योंमें ' **सोम पीओ** ' ऐसा न कहते हुए ' पीओ सोम ' ऐसी रीतिसे वाक्य बने हैं। ' सोम पीओ ' इस ढंगके तो अनेक हैं ही, पर ऐसे उलटे ढंगके भी बहुत हैं। इससे अनुमान हो सकता है कि वेदभाषामें दोनों प्रकारके बाक्य होते थे, संस्कृतमें भी दोनों प्रकारके होते थे। इन दोनों पद्धतियोंमेंसे एक पद्धति भारतमें रही और दूसरी विदेशोंमें गई। इन दोनों पद्धतियोंकी आदि जननी ' वैदिक भाषा ' ही है।

इस तरहकी अन्यान्य पद्धतियां भी वेदोंके अध्ययनके समय विचारमें लेनी चाहिये।

वसिष्ठ ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका सप्तममण्डल तथा अथर्ववेदके मन्त्र)

लेखक

पं० श्रीपाद् दामोदर सातवलेकर

अध्यक्ष—स्वाध्याय-मण्डल, 'आनन्दाश्रम'

किल्ला-पारडी, (जि. सूरत)

संवत् २००८; सन १९५२

मूल्य ७) रु.

वसिष्ठ ऋषिका संदेश

ऐसा वीर हो

शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान् जेता पवस्व सनिता धनानि ।
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाळ्हः साह्वान् पृतनासु शत्रून् ॥

ऋ० ९।९०।३

(शूरग्रामः) शूरवीरोंका संघ बनानेवाला, (सर्ववीरः) सब प्रकारके वीरोंको अपने पास रखनेवाला, (सहावान्) शत्रुका पराभव करनेवाला, (जेता) विजयी, (तिग्मायुधः) तीक्ष्ण आयुधोंको धारण करनेवाला, (क्षिप्रधन्वा) शीघ्र धनुष्य चलानेवाला, (समत्सु असाळ्हः) युद्धोंमें शत्रुके लिये आजिंक्य, (पृतनासु शत्रून् साह्वान्) युद्धोंमें शत्रुओंका पराभव करनेवाला, (धनानां सनिता) धनोंका दान करनेवाला ऐसा वीर तुम बनो और सबको (पवस्व) पवित्र करो।

मुद्रक तथा प्रकाशक

व. श्री. सातवलेकर, बी. ए.

भारत-मुद्रणालय, आनन्दाश्रम, किल्ला-पारडी (जि. सूरत)

वसिष्ठका मण्डल

ऋग्वेदका सप्तम मण्डल '**वसिष्ठ मण्डल**' करके प्रसिद्ध है। इसमें १०४ सूक्त हैं और ८४१ मंत्र हैं। इसके अतिरिक्त ऋग्वेदमें वसिष्ठमंत्र हैं। वे अष्टम मण्डलके (८।८७) सतासीवे सूक्तमें ६ मंत्र हैं और नवम मण्डल–सोममण्डलमें ५३ मंत्र है। (सूक्त ६७।१९–३२ और ९०।१–६ तथा ९७।१–३०; १०८।१४–१६)। ऋग्वेदके १०।१३७।७ वॉ एक मंत्र है। और अथर्ववेदमें ४४ मंत्र हैं। इस तरह कुल मंत्र ९४५ हुए। इनके अतिरिक्त यजुर्वेदमें तथा ब्राह्मणग्रंथोंमें थोडेसे वसिष्ठ मंत्र होंगे, परंतु उनका संग्रह यहा किया नहीं है।

ऋग्वेदके द्वितीय मण्डलसे पाहिले छ मण्डल सप्तऋषियोंके मुख्यतः हैं (मण्डल २) गृत्समद, (३) विश्वामित्र, (४) वामदेव, (५) अत्रि, (६) भरद्वाज, (७) वसिष्ठ ये बडे ऋषि हैं। प्रथम मण्डलमें शतर्चां ऋषि हैं। दशम मण्डलमें छोटे छोटे अनेक ऋषि हैं। नवम मंडल सोमदेवताका है और अष्टम मंडल भी फुटकर छोटे सूक्तवाले ऋषियोका है। इन सबमें मुख्य और प्राचीन अर्थात् माननीय ऋषि वसिष्ठ हैं। इसलिये इसका मण्डल प्रथम प्रकाशित किया है।

विश्वामित्र राजा था। वह ब्राह्मण होनेकी इच्छा करके तपस्या करने लगा। उसको ब्राह्मण कहके घोषणा करनेका मान वसिष्ठका था, क्योंकि उस समयके ब्राह्मण समुदायमें वसिष्ठ ऋषि मुख्य थे। वसिष्ठने विश्वामित्रको ब्राह्मण मान लिया, तो सब लोग उसको ब्राह्मण मानने लगे इतना महत्त्व वसिष्ठका था।

नवीन स्तोत्र

नवीन स्तोत्र करता हूं ऐसा वसिष्ठमंत्रोंमें निम्नलिखित मंत्रोंमें है—

८५ **इदं वचः. अग्नये उद्... अजनिष्ट।** ऋ० ७।८।६ यह स्तोत्र अग्निके लिये बनाया है।

१०५ **अग्ने! त्वां वर्धन्ति मतिभिः वसिष्ठाः।** ऋ० ७।१२।३ हे अग्ने! वसिष्ठ लोग अपने स्तोत्रोंसे तेरा वर्णन करते हैं।

१५० **वसिष्ठः ब्रह्माणि उपससृजे।** ऋ ७।१८।४ वसिष्ठ स्तोत्रोंको निर्माण करता रहा।

२१० **हे इन्द्र! ये च पूर्वे ऋषयो ये च नूत्ना ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः।** ऋ० ७।२२।९।— हे इन्द्र! जो प्राचीन ऋषि और जो अर्वाचीन विप्र स्तोत्र करते हैं।

२४५ **उप ब्रह्माणि शृणव इमा नः।** ऋ० ७।२९।२ ये हमारे स्तोत्र श्रवण कर।

२४७ **येषां पूर्वेषां अशृणोः ऋषीणां।** ऋ० ७.२९।४ जिन प्राचीन ऋषियोंके स्तोत्र तुमने सुने थे।

३४५ **जुषन्त इदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः।** ऋ० ७।३५।१४ नये किये जानेवाले इस स्तोत्रका सब देव स्वीकार करें।

३४८ **इमां सुवृक्तिं... कृण्वे ... नवीयः।** ऋ० ७।३६।२ इस नवीन स्तोत्रको करता हूं।

३५९ **वयं... ब्रह्म कृण्वन्तो .. वसिष्ठा।** ७।३७।४१ हम वसिष्ठ स्तोत्र करते हैं।

५१० **मन्मानि नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन् इमानि।** ७।६१।६। ये नवीन किये मननीय स्तोत्र हैं।

५९४ **पुरुणि अभि ब्रह्माणि चक्षाथे ऋषीणाम्।** ७।७०।५— बहुतसे ऋषियोंके किये स्तोत्र तुम देखते हो।

७७५ **इयं...सुवृक्तिर्ब्रह्म इन्द्राय वज्रिणे अकारि।** ७।९७।९ यह उत्तम स्तोत्र वज्रधारी इन्द्रके लिये किया है।

वसिष्ठके मंत्रोंमें ये मन्त्र बडे महत्त्वके हैं। इनमें—

नूत्ना ब्रह्माणि विप्रा अजनयन्त (७।२२।९)

नवीयः क्रियमाणं ब्रह्म (७।३५।१४)

नवीय. सुवृक्तिं कृण्वे (७।३६।६)

नवानि इमानि मन्मानि कृतानि (७।६१।२)

इन मंत्रोंमें नये स्तोत्र बनानेका स्पष्ट उल्लेख हैं। '**विप्राः नूत्नानि ब्रह्माणि जनयन्त**' (७।२२।९) ज्ञानी ब्राह्मण नये स्तोत्र रचते हैं ऐसा स्पष्ट कहा है। इसी मंत्रमें—

'**पूर्वे ऋषयः ये च नूत्नाः ब्रह्माणि जनयन्त**' (७।२२।९)

' प्राचीन ऋषि और नये ऋषि स्तोत्र करते हैं। ' एसा कहा है। '**नवीयः क्रियमाणं ब्रह्म**' (७।३५।१४) नया स्तोत्र किया जा रहा है। यह वर्णन तो स्पष्ट है कि स्तोत्र बनाया जाता था। बडे वृद्ध ऋषि भी स्तोत्र बनाते थे और नये तरुण ऋषि भी बनाते थे। ये सब मंत्र होते हुए इनके साथ यह भी एक मंत्र है—

दैव्यः श्लोकः इन्द्रं सिषक्तु।

देवकृतस्य ब्रह्मण. राजा। (७.९७।३)

' यह दिव्य श्लोक इन्द्रका वर्णन करे। यह इन्द्र देव के बनाये स्तोत्रका राजा है।' यहां देवकृत स्तोत्र है ऐसा स्पष्ट कहा है।

देवस्य पश्य काव्यं

न ममार न जीर्यति। (अथर्व० १०।८।३२, १०।१५। १० ।९)

' देवका यह काव्य देखो जो मरता नहीं और न जीर्ण होता है, ऐसा अथर्ववेदका वचन है। अब इनकी संगति कैसी है उसका विचार करना चाहिये। '**देवस्य पश्य काव्यं**' इतना मंत्रभाग दो बार आया है (अ० १०।८।३२, १०।१५ (१०) ९) और '**न ममार न जीर्यति**' यह मन्त्रभाग अथर्वमें एक ही वार आया है। यह देवका काव्य है, इसको देखो, यह मरता नहीं और यह जीर्ण भी नहीं होता।

यहां दो प्रकारके भाव हमारे सामने आगये। एक यह कि ' यह ईश्वरका काव्य है अतः यह मरता नहीं और न यह जीर्ण होता है। ' तथा दूसरा यह भाव है कि ' यह सूक्त नया भी बनाया जाता है। ' इन दो भावोंका समन्वय कैसा हो सकता है। इसका विचार करना चाहिये। पूर्व स्थानमें जो मंत्र दिये हैं उनमें '**नवीन स्तोत्र**' बनानेका भाव स्पष्ट है। '**क्रियमाणं**' आदि शब्द स्पष्ट हैं। वसिष्ठका नाम भी है और अनेक वसिष्ठोंका भी उल्लेख है। अनेकवचनी वसिष्ठपद होनेसे यह वसिष्ठ पद कुलका-कुटुंबका-नाम प्रतीत होता है। नहीं तो अनेक वसिष्ठ होनेका अर्थ कुछ भी नहीं हो सकता।

देवका काव्य है, उसके द्रष्टा वसिष्ठ, जो एक या अनेक होंगे, हो सकते हैं। एक वसिष्ठ जो मूल गोत्रका प्रवर्तक है वह भी द्रष्टा हो सकता है और उसके गोत्र धारण करनेवाले द्रष्टा हो सकते हैं। अर्थात् यह एक योगसाधनकी प्रक्रिया होगी जो उसका अनुष्ठान करनेवाले को साध्य हो सकती है। अर्थात् योगसाधनसे मनुष्य उस उच्च अवस्थाको प्राप्त हो सकता है कि जिस अवस्थामें उसको मंत्रोंका स्फुरण होना संभव है।

आकाशका गुण शब्द है। आकाश ईश्वरका देह है उसका निज स्वभाव शब्द है। अतः यह शब्द सनातन और शाश्वत है। शाश्वत शब्द ही वेद है। यदि ईश्वरके शाश्वत आकाशका गुण शाश्वत शब्द है, और वही शब्द वेद है, तब तो यह निःसंदेह है कि जो इस आकाशके प्रकंपनोंको प्राप्त कर सकता है वह वेद मंत्रोंको देख सकता है और देखकर उच्चार भी कर सकता है। इसलिये ऐसी एक प्रक्रिया देखनी चाहिये जिससे हम आकाशके स्थायी प्रकंपनोंको स्वीकार कर सकें और वहीं हम भी बोल सकें। दूसरे नीच स्वरवाले कंपन उसमें न मिल सकें।

' आकाशका गुण शब्द है और आकाशके सात विभाग हैं। उनमें उच्चसे उच्च विभागमें वेदके शब्द हैं। जो अपना संबंध उससे निर्माण कर सकता है वह उन शब्दोंका स्फुरण अपने अन्तःकरणमें होनेका अनुभव कर सकता है। इसलिये मंत्र में कहा है कि—

पूर्वे ऋषयः नूत्नाः च ब्रह्माणि जनयन्तः। (७।२२।९)

पूर्व समयके ऋषि और नवीन ज्ञानी स्तोत्रोंको प्रकट करते हैं। ' जैसे पूर्व समयके ऋषि स्तोत्र बोलते थे वैसे नवीन ऋषि भी स्तोत्र बोलते हैं। क्योंकि उनका स्फुरणका मूलस्रोत एक ही है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वरका सनातन काव्य है, उसका स्फुरणसे दर्शन जिस रीतिसे प्राचीन ऋषि

करते थे, वैसे ही नवीन ऋषि भी करते है। इसलिये वे कह सकते हैं कि हम नवीन स्तोत्र करते हैं।

श्री न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षणका नियम देखा और उन्होंने उस नियमका प्रकाशन किया। पर यह नियम सनातन ही है। श्री न्यूटनने उसको बनाया नहीं। श्री न्यूटनने उसका दर्शन किया वैसा ही वैशेषिकोंने भी दर्शन किया था और '**गुरुत्वात् पतनं**' यह सूत्र भी उन्होंने लिखा था। इस नियमका दर्शन आज भी कोई कर सकता है। जैसा प्राचीन द्रष्टाओंने किया था। इसलिये कहा है—

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।

ऋ० १।१।२

'अग्निकी स्तुति जैसी प्राचीन ऋषियोंने की वैसी ही नूतन ऋषियोंने भी की है।' इसका भाव यही है।

योगसाधन द्वारा मनकी एकाग्रता करनेसे आखें बंद करनेपर भी नाना प्रकारके पृथिवी आप आदि तत्त्वोंके रंग दिखाई देते हैं। जो तत्त्व उस समय सामने आता है उसका रंग आखके सामने दीखता है। इन रंगोंसे पञ्चतत्त्व जाने जा सकते हैं। इसी तरह ध्यानके समय शब्द भी सुनाई देते हैं। यह बात प्रसिद्ध है कि रंगरूप ध्यानमें दिखाई देनेका कार्य अग्नितत्त्वके साक्षात्कारसे होता है और शब्दका श्रवण होनेका सुयोग आकाश तत्त्वके साक्षात्कारसे होता है। यही शब्दश्रवणका साक्षात्कार आकाशके अत्यंत सूक्ष्मतत्त्वके संपर्कसे होने लगा तो वही शाश्वत शब्दका स्फुरण समझना योग्य है। यह साधन करनेवालोंको हो सकता है। इससे सबको विदित होगा कि किसी नवीन ऋषिको स्फुरण हुआ तो भी वह शाश्वत शब्दका ही स्फुरण है। आकाशतत्त्व शाश्वत है, उसमें व्यापक आत्मा शाश्वत है। आत्माका ज्ञान सत्य सनातन और शाश्वत है। यह परमात्माका ज्ञानमय शब्द परमात्माकी प्रेरणासे आकाशमें व्यापक है। वह आकाशका निज स्वभाव ही है। जो उसके प्रकंपनोंको ले सकता है, उसमें वही शब्द स्फुरित हो सकता है। मास दोमास प्राणायाम करनेपर अद्भुत शब्दका नाद सुनाई देता है। यह नाद इतना मधुर रहता है कि देरतक इसका श्रवण करनेपर भी इसकी मधुरिमामें न्यूनता नहीं आसकती। यह शब्दश्रवण प्राणायामाभ्यासीके परिचयकी बात है। यह प्राथमिक अनुभव है। शाश्वत शब्दश्रवण अन्तिम सिद्धि है। पर आकाशतत्त्वका अनाहत शब्द प्रारंभावस्थामें भी सुनाई देता है।

गंध-रस-रूप-स्पर्श-शब्द ये क्रमशः पृथिवी-आप-तेज-वायु आकाशके निजगुण हैं और प्राणायामाभ्यासीको इन तत्त्वोंके साक्षात्कारके साथ इन गुणोंका साक्षात्कार होता है। यह अधिक अभ्यास होनेपर शाश्वत शब्दका स्फुरण होना स्वाभाविक है और इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है।

इसलिये 'नूतन ऋषि नवीन स्तोत्र करते है' इस प्रकारके वर्णन इस मानसिक एकाग्रताकी अवस्थामें साक्षात् होनेवाली बात है। इसलिये वह शक्य है।

भावका सनातनत्व

अब मन्त्रोंके भावका सनातनत्व कैसा होता है यह देखना है। इसके लिये एक दो उदाहरण हम देते हैं—

१ रामने रावणका वध किया,

२ हे राम! तू रावणका वधकर्ता है,

३ मैं राम हूं और मैं रावणका वध करूंगा।

पहिले वाक्यमें तृतीय पुरुषका प्रयोग है, दूसरे वाक्यमें द्वितीय अथवा मध्यम पुरुषका प्रयोग है और तीसरे वाक्यमे प्रथम या उत्तम पुरुषका प्रयोग है। इसी तरह पहिला वाक्य भूतकालमें, द्वितीय वर्तमानकालमें और तीसरा भविष्यकालमें है। पर इनसे 'रामके द्वारा रावणका वध' का भाव ही प्रकट हो रहा है और यही मुख्य सनातन तथा शाश्वत भाव है। मुख्य वक्तव्य वचनका उद्देश्य ही यह है। देखिये और उदाहरण—

१ **इन्द्रः वृत्रं हन्ता।** ऋ० ७।२०।२

२ **हे इन्द्र! स्वेन शवसा वृत्रं जघन्थ।**

ऋ० ७।२१।६

३ **इन्द्रः वृत्राणि अप्रति जघन्वान्।**

ऋ० ७।२३।४

४ **हे शूर! वृत्रा सुहना कृधि।** ऋ० ७।२५।५)

यहां वृत्र पद एकवचनमें है और बहुवचनमें भी है। तथा भूत- वर्तमान-भविष्यकालोंके प्रयोग भी हैं। परंतु इससे

मन्त्रके मुख्य उद्दिष्टमें कोई भेद नहीं होता। ' इन्द्र वृत्रका वध-कर्ता है। ' यह मुख्यभाव है। इन सब मंत्रोंमें वही स्थायी-भाव है, शाश्वत और सनातन भाव है, न बदलनेवाला भाव है। इसलिये मुख्यभावको सामने रखकर कालमें तथा पुरुषमें थोडासा व्यत्यय किया तो कोई सनातन अर्थकी हानि नहीं होती।

इसी तरह एक मंत्रके अनेक टुकडे करके, सब पदोंका भाव स्थायी रखकर, अर्थ देखनेमें भी कोई हानि नहीं है, प्रत्युत अर्थका गौरव ही है, इसका उदाहरण देखिये—

मा स्रेधत सोमिनो दक्षता महे कृणुध्वं राय आतुजे।

तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति न देवासः कवत्नवे॥
ऋ० ७।३२।९

१ सोमिनः मा स्रेधत- यज्ञ करनेवालोंको कष्ट न दो,

२ दक्षत— दक्षतासे कर्म करो।

३ महे आतुजे कृणुध्वं- बडे शत्रुनाशके युद्धके लिये यत्न करो,

४ राये कृणुध्वं- धन प्राप्त करनेका यत्न करो,

५ तरणिः इत् जयति- त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला निःसंदेह विजय प्राप्त करता है,

६ तरणिः इत् क्षेति- त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला घरमें सुखसे रहता है।

७ तरणिः इत् पुष्यति— त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला धन धान्यसे, सेवकोंसे पुष्ट होता है।

८ कवत्नवे देवासः न— कुत्सित कर्म करनेवालेकी सहायता देव नहीं करते।

यहां एक मंत्रके अनेक विभाग किये हैं। कई पद और कई क्रियाएं पुनः पुनः ली हैं। और इन्द्रके वर्णनपरक मन्त्रमें भी सनातन शाश्वत धर्मका दर्शन किया है। यह पद्धति अशुद्ध नहीं है। मन्त्रके पदोंमें यह सब अर्थ है वह अधिक स्पष्ट करनेके लिये ऐसा किया गया है। वह योग्य ही है।

आगेके दिये अर्थमें प्रथम मन्त्रका अर्थ दिया है और पश्चात् आशय मनमें धारण करके उससे प्रकट होनेवाला मानव धर्म दिया है। तथा मन्त्रका सनातन, शाश्वत, स्थायीभाव ऐसे मन्त्रोंके टुकडे देकर दिया है। यह पद्धति मंत्रका रहस्य ध्यानमें आनेके लिये अत्यन्त आवश्यक है और पाठक भी इस पद्धतिका अवलंबन करके जितने रहस्यार्थ यहां दिये हैं उनसे अधिक अर्थ मननसे कर सकते हैं। ऐसा करनेके समय कहांका पद कहां भी लगा देना उचित नहीं है। पर एक वाक्यके अधिक वाक्य बनाना और उससे अर्थगौरवको प्रकट करना योग्य है। इस अर्थमें ऐसा अनेक मंत्रोंके साथ किया है।

इसी तरह ' **वज्रहस्त शूर इन्द्र** ' ये संबोधनके पद हैं। ये संबोधनके पद मंत्रोंके अर्थमें संबोधनपरक ही रहेंगे। पर रहस्य अर्थके प्रकाशन करनेके समय ' **इन्द्रः शूरः वज्रहस्तः अस्ति** ' इन्द्र वीर शूर और शस्त्रधारी होता है। जो शूर है वह शस्त्रधारी हो ऐसा सामान्य अर्थ भी इससे प्रकट हो जाता है। इसी रीतिसे संबोधनके वाक्य (सामान्य सनातन अर्थ करने-वाले) करनेमें भी कोई दोष नहीं है उदाहरणके लिये देखिये —

' **हे शूर इन्द्र! सूरिभ्यः वरूथं यच्छ** ' हे शूर इन्द्र! तू ज्ञानियोंको धन दो। यह इन्द्रको संबोधन करके कहा है, वह बदलकर ' शूर वीर ज्ञानियोंके लिये धन देवे। ' ऐसा भाव देखनेमें कोई हानि नहीं, प्रत्युत इससे अच्छा मानव धर्म प्रकट हो जाता है। इस तरह अनेक मंत्रोंमें शाश्वत अर्थ पाठक देख सकते हैं।

मंत्रोंके अर्थ करने और स्पष्टीकरण देनेमें जो हमने विशेषता की है वह यही है। पाठक इसको इस पुस्तकमें देखेंगे। इसके पश्चात् विषयवार मंत्रोंके वचन दिये हैं, तथा क्रमसे मंत्रोंके सुभाषित भी दिये हैं। ये सुभाषित और ये विषयवार संग्रह व्याख्याता तथा लेखकोंके लिये अत्यंत उपयोगी सिद्ध होनेवाले हैं। आशा है कि पाठक इनका यथायोग्य उपयोग करके लाभ उठावेंगे।

इस पद्धतिसे वेदमंत्रोंका अर्थ दर्शाना और रहस्य बताना यह इस समयतक किसीने नहीं किया है। यही प्रथम प्रयत्न है। वेदमंत्रसे स्मृतिका संबंध हम इस रीतिसे बता सकते हैं। हमने इसमें यह नहीं बताया है, परंतु मानवधर्ममें हमने यह

दिग्दर्शित किया है। आगे स्वतंत्र लेखसे किस श्रुतिसे कौनसा स्मृतिवचन बना है यह हम बतायेंगे।

ऋषि देवताकी स्तुति करता है वहां उस देवतामें वह आदर्श पुरुषका दर्शन करता है और उस देवतामें प्रतीत होनेवाले आदर्श पुरुषका वह वर्णन होता है। इसलिये वेदका देवताका वर्णन आदर्श पुरुषका वर्णन है, अतः वह मानवोंके लिये अपने सामने आदर्श रखने योग्य है। यह बात हमने इस पुस्तकमें बतायी है। पाठक इसका अधिक मनन करें। इससे वेद मंत्रोंसे मानवधर्म प्रकट होता है। यही मुख्य वेदका मननीय विषय है। हमने प्रायः प्रत्येक सूक्तके विवरणमें यह बताया है। जो पाठकोंके लिये मार्गदर्शन करा सकता है।

देवताके वर्णनमें आदर्श पुरुष

देवताओंके वर्णनमें आदर्श पुरुषका दर्शन है, अथवा आदर्श पुरुषका वर्णन है, यह नवीन बात पाठक यहां देख सकते हैं। इसका नमूना यहां दिखाना योग्य है। इसलिये यहां थोडासा नमूना दिखाते हैं—

अग्निवर्णनमें आदर्श पुरुष

देखिये अग्निका वर्णन ऋषि कर रहा है, वह केवल ' आग ' का ही वर्णन नहीं है, क्योंकि उस वर्णनमें ऐसे पद प्रयुक्त हुए है कि जो आगमें संगत नहीं हो सकते। देखिये— " **५० कविः (६७); ८७ कवितमः, ८९ अमूरः कविः** " ये पद आगका वर्णन करनेमें सार्थ नहीं हो सकते, क्योंकि आग कभी ' कवि ' नहीं हो सकती। अमूढ कवि तो आगका होना संभव ही नहीं है। पर ज्ञानी पुरुषके वर्णनके समान पद और वाक्य अग्निके वर्णनमें हैं। वे आदर्श ज्ञानीका वर्णन करते हैं। (सूचना- यहां जो क्रमांक दिये हैं वे वसिष्ठ मंत्रोंके क्रमांक हैं। उस क्रमांकके मंत्रमें वे पद पाठक देख सकते हैं।)

' **७७ ब्रह्मा; ११८ सुब्रह्मा** ' ये अग्निके वर्णनके पद बडे ज्ञानीके वाचक हैं। अग्नि तो ज्ञानी नहीं है। पर उसका वर्णन ज्ञानी जैसा किया जाता है। इसलिये हम कह सकते हैं कि यहां अग्निमें ऋषिने आदर्श ज्ञानी पुरुषका दर्शन किया है। ' **११८ सुशमी** ' उत्तम रीतिसे इन्द्रियोंका दमन या शमन करनेवाला। यह अग्नि नहीं है, पर अग्निमें जिस ज्ञानी पुरुषका दर्शन ऋषिने किया, उसका यह वर्णन है।

' **८८ विशां तमः तिरः ददृशे** ' प्रजाजनोंका अन्धकार यह अग्नि दूर करता है। अग्नि प्रकाशता है और उजाला करता है, उस उजालेसे अन्धकार दूर होता है। अग्निमें यह बात है। जहां वह जलता है, वहांका अन्धेरा दूर होता है। इसलिये अन्धेरेमें प्रवास करनेवाले लोग अपने साथ जलती लकडी, दीप तथा कुछ अन्य प्रकाशका साधन रखते हैं और मानते हैं कि अग्नि हमारा मार्गदर्शक होता है। अग्नि हमें अन्धेरेसे पार करता है। यह सत्य भी है। परंतु ज्ञानी पुरुषमें यह विशेष रीतिसे सत्य है। ज्ञानी अज्ञानीमें ऐसा ज्ञान दीप जलाता है कि, उससे उसका अज्ञानान्धकार दूर हो जाता है और उसके लिये प्रकाशका मार्ग खुल जाता है। इस तरह शुद्ध आगका वर्णन भी ज्ञानीका वर्णन हो जाता है और ज्ञानीका वर्णन भी कभी कभी आगका वर्णन होता है। इसीलिये हमने कहा कि ' अग्निमें ऋषि आदर्श पुरुषका दर्शन करता है। '

अग्निका वर्णन करते हुए ' **१८ सत्यवाक्, ७६ मधुवाचा, १९ ऋतावा** ' ये पद प्रयुक्त हुए हैं। यह अग्नि सत्यभाषण करनेवाला है, मीठा भाषण करनेवाला है, सत्यनिष्ठ है। पाठक देखें कि ये पद केवल आगका वर्णन किस तरह कर सकते हैं। कौन कह सकता है कि यह आग सत्यभाषण करती है। इसलिये ये पद निःसंदेह आदर्श पुरुष, जो सत्यभाषण करनेवाला है, मधुरभाषण करनेवाला है, उसका दर्शन कर रहे हैं।

वास्तवमें ' **अग्नि** ' पद भी ' **अग्रणी** ' अथवा नेताका वाचक है। अग्रणीमें ' **अ-ग्-र-णी** ' इन अक्षरोंके बीचके ' र ' कारका लोप होकर ' **अग्नी** ' बना है, अतः यह अग्रणी ही है और अग्रणी तो ज्ञानी, मार्गदर्शक होना ही चाहिये। इस तरह अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन होता है।

' **४८ तरुणः, ३४ वीरः, ४ सुवीरः** ' ये वीरके वाचक पद अग्निके वर्णनमें आये हैं। अग्नि वीर है, अर्थात् अग्रणी वीर होना चाहिये। जो वीर नहीं होगा, वह नेता किस तरह बन सकता है? नेतृत्वमें वीरताका होना अत्यंत आवश्यक है।

' **६९ नृतमः, ५८ नेता** ' ये पद नेताके वाचक हैं, ये यहां अग्निके लिये प्रयुक्त हुए हैं। वे बता रहे हैं कि यहांका अग्नि नेता है। संचालक है। धुरीण है। जनताका प्रमुख है।

'२३ स्वनीकः' अर्थात् उत्तम सेना अपने साथ रखनेवाला अग्नि है। यह निःसन्देह नेता है, जो अपने साथ उत्तम सेना रखता है। इसका वर्णन भी '४० ते सेना सृष्टा एति' तेरी सेना आज्ञा होनेपर शत्रुपर आक्रमण करती है। ऐसी जिसकी सेना होगी वह आग किस तरह हो सकती है ? यह तो अग्रणी ही होगा।

इस तरह अग्निके वर्णनमें आदर्श पुरुषका दर्शन ऋषि करता है। वेदके मंत्र देखकर उनमें आदर्श पुरुषका दर्शन पाठकोंको करना उचित है। वेदमें यही देखना चाहिये। वेदके मंत्रोंका मनन करनेपर यह आदर्श पुरुष कैसा है, वह पाठकोंको जानना चाहिये और ऐसा आदर्श मैं अपने जीवनमें ढालूंगा, ऐसा यत्न पाठकोंको करना चाहिये। वेदका प्रत्येक पद बडा बोधप्रद हो सकता है, यदि उससे इस तरह बोध प्राप्त किया जाय।

इसी तरह इन्द्रके वर्णनमें शक्तिकी प्रधानता और शत्रुके नाश करनेका वर्णन विशेष है। अग्निका आदर्श ब्राह्मणका आदर्श है और इन्द्र क्षत्रियका आदर्श है। अन्यान्य देवताएं अन्यान्य आदर्श दर्शाते हैं। वेदके पदोंके अर्थकी अपेक्षा यह आदर्श अधिक उपयोगी है। साधकको इसी आदर्शकी ओर अपना ध्यान लगाना उचित है। मैं ऐसा बनूंगा ऐसा मनमें निश्चय करना और वैसा बननेका प्रयत्न करना साधककी उन्नतिके लिये आवश्यक है। इस ग्रंथमें यह आदर्श बताया है।

इस तरहका विचार हमने प्रथम ही जनताके सन्मुख रखा है। प्रथम रखनेके कारण इसमें त्रुटि रहनेकी संभावना है। यदि किसी पाठकको इस तरहकी त्रुटी मालूम हुई तो कृपा करके वह विद्वान पाठक उसको लिखकर हमारे पास भेज दें। हम उसका विचार करेंगे और योग्य सुझावका हम स्वीकार करेंगे।

स्वाध्याय-मण्डल, 'आनन्दाश्रम'
किल्ला-पारडी (जि. सूरत)
११ माघ २००८

लेखक
श्री. दा. सातवलेकर
अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल